प्रकाशकीय

"योगेश्वर श्रीकृष्ण" का यह द्वितीय संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव प्रसन्नता हो रही है। भारत के गौरवशाली इतिहास में सूर्यवंश में श्री रामचन्द्र और चन्द्रवंश में श्री कृष्णचन्द्र का नाम अतीव सम्मान के साथ आज भी लिया जाता है। उन दोनों महापुरुषों का पावन तथा आदर्श चरित्र भारत को नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व के अतीत में शान्ति व कल्याण पथ का प्रदर्शन करता रहा है और दुःख-सन्तप्त, अशान्त, निराश, कर्तव्यबिमुख तथा पथभ्रष्ट लोगों को सुख-शान्ति का सन्देश देकर कर्तव्य व सन्मार्ग का दर्शन कराकर संजोवनी बूटी को भाँति संजीवन देता रहा है और भविष्य में भी निस्सन्देह देता रहेगा। भारतीय संस्कृति व सभ्यता के देदीप्यमान सूर्य-चन्द्र की भाँति उज्ज्वल ये सितारे हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक समस्त देश को संस्कृति, सभ्यता व भावना के एकता सूत्र में आज भी बांधे हुए हैं। हम आज भी स्वनाम धन्य इन महापुरुषों के नाम बड़े गौरव व सम्मान से लेते हैं। इन दोनों ही महापुरुषों के चरित्रों पर पौराणिक कालीन अवतारवाद अथवा इनको भगवान बनाने की स्पर्धा में घड़े काल्पनिक, आख्यानों से जो श्यामता छा गई थी उससे इनका चरित्र हिमालय से निकली गंगा की स्वच्छ धारा को हुगली (कलकत्ता) की कलुषित गंगा की भाँति कलुषित करके जो विकृत कर दिया गया था, उसको १९वीं शदी के महान् सुधारक महर्षि दयानन्द ने स्वच्छ व निष्कलंक बनाने का महान् उद्योग किया है। उनके बताये मार्ग पर चलकर ही आज हम राम-कृष्ण के वंशज रामकृष्ण के सच्चे स्वरूप को फिर से समझ सकते हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण के पावन चरित्र को जन-जन तक पहुंचाना आज की परिस्थिति में अत्यावश्यक हो गया है। उनके स्वच्छ चरित को पढ़ कर ही हम श्रीकृष्ण के नकली भक्ति-पाश से मुक्त होकर सच्चे भक्त बन सकते हैं। श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र को धारण कर बड़े-बड़े अन्यायी तथा अत्याचारी साम्राज्यों को नष्ट कर धर्म राज्य की स्थापना की थी।

आज भी बढ़ते हुए अधर्म, अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने की परमावश्यकता है। इसके लिये कृष्णभक्तों में कृष्ण के पाँचजन्य शख के समान एकता का स्वर, बंशी और गोपी प्रसङ्गों को छोड़कर ब्रह्मचर्य व योग की शक्ति को धारण करने और अन्याय का प्रतिरोध करने के लिये आत्मिक शक्ति व शस्त्रास्त्र धारण करने की महती आवश्यकता है। हम उनके चित्र के ही भक्त न होकर चरित्र के भी भक्त बनें, ऐसे दृढ़ संकल्प को धारण करके स्वावलम्बी होना अत्यावश्यक है।

'योगेश्वर श्री कृष्ण' के प्रथम-संस्करण में उच्चकोटि के विद्वानों के लेखों का ही संग्रह किया गया था। यद्यपि उन लेखों में भी कृष्ण के आदर्श चरित का ही कथन विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया था, किन्तु क्रमबद्ध श्रीकृष्ण का जीवन-चरित नहीं था। प्रस्तुत संस्करण में महाभारत के आधार पर श्रीकृष्ण का जीवन चरित भी दिया जा रहा है। इस के संकलन एवं सम्पादन करने में श्री पं० राजवीर शास्त्री ने जो अत्यधिक श्रम किया है, मैं उनका हृदय से साधुवाद करता हूं।

आर्ष-भक्त
धर्मपाल आर्य
मन्त्री आर्ष-साहित्य प्रचार ट्रस्ट
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

दिनांक २४ अगस्त ८६

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में श्री कृष्ण का स्थान

"देखो, श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों[1] के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती।"

(स०प्र० ११वां समु०)

---

१. आप्तपुरुष का लक्षण : जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष, जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो, उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित, सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो।" (स० प्र० तृतीय समु०)

सम्पादकीय

जन्माष्टमी का पावन-पर्व

भारतीय-संस्कृति में त्यौहारों का एक विशिष्ट स्थान है। यदि यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वैदिक-संस्कृति से अनुप्राणित भारतीय समाज में ऐसा कोई दिन होता होगा कि जिस दिन कोई त्यौहार न होता हो। पूरे वर्ष त्यौहारों की क्रमामाला चलती ही रहती है। उन समस्त त्यौहारों का क्या मूल्यांकन है? यद्यपि यह एक पृथक् चर्चा का विषय है, किन्तु यह तो सत्य है कि आर्य जाति सदा से ही पर्व-प्रिय रही है, और पर्वों को बहुत आमोद-प्रमोद के साथ मनाती रही है और यही कारण है कि यह आर्य जाति अपने उज्ज्वल गौरवपूर्ण अतीत को इन पर्वों के माध्यम से स्मरण करके ही विदेशियों से पादाक्रान्त होने पर भी विदेशी संस्कृति व सभ्यताओं से संघर्ष करती रही और अपनी जीवन-प्रद संस्कृति को जीवित रखती रही। सच कहा है कि जिस राष्ट्र में अपने पूर्वजों के सम्मान को पर्वों के माध्यम से जीवित रखा जाता है तथा पर्वों को सहर्ष मनाया जाता है, वे राष्ट्र तथा जातियाँ सदा उन्नति करते हैं।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी का यह पावन पर्व भी एक ऐसी विशिष्ट स्मृति को संजोये हुए है, जिसे स्मरण करके मृतप्राय, निराश, असहाय तथा निर्बल व्यक्तियों में भी जीवन, उत्साह, आशा, सनाथता का आश्रय तथा जीवन की ज्योति की झलक दिखाई देने लगती है। श्रीकृष्ण की जीवन गाथा यथार्थ में मृत संजीवनी है, जिसे पढ़कर अथवा सुनकर कायर, डरपोकों के मन में भी वीरता, निर्भयता का संचार हुए बिना नहीं रहता। श्री कृष्ण के कार्यों तथा उपदेशों को पढ़कर तो एक ऐसी आध्यात्मिक ज्ञान की पावन धारा प्रवाहित हो जाती है कि महा:दुखों में निमग्न निराश व्यक्ति भी दु:खों को भूलकर आनन्दित होने लगता है। ठीक ही कहा है—**'स जातो येन जातेन याति वंशसमुन्नतिम्'** संसार में ऐसे महामानवों का ही जन्म सफल होता है, जिनसे परिवार, जाति व राष्ट्र उन्नति को प्राप्त करते हैं और महर्षिदयानन्द के शब्दों में ऐसे व्यक्ति ही अहोभाग्यशाली होते हैं, जिनका समस्त जीवन नि:स्वार्थ सेवा में ही लगा हो—**"धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।"**

किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि इतने महान्, उदारचेता व आप्तपुरुष श्रीकृष्ण का चरित जितना महान् व पवित्र है, हमने उसको उतना ही अधिक निकृष्ट व अपवित्र बना डाला है। इससे अधिक क्या गिरावट की हद हो सकती है कि श्रीकृष्ण के तथाकथित भक्तों ने ही एक तरफ तो श्रीकृष्ण को मानवता से हटाकर ईश्वर का ही अवतार बना दिया और दूसरी तरफ श्रीकृष्ण को 'चोर-जार-शिरोमणि:' = 'चोरों व व्यभिचारियों का सरदार' कहकर सामान्य मानव से भी नीचे गिरा दिया। जिसके दूरगामी परिणामों को इन श्रीकृष्ण के नकली भक्तों ने कभी नहीं सोचा कि हम जैसे हैं, वैसे ही रह लें किन्तु अपने प्रेरणा देने वाले आदर्श महापुरुषों को तो कलंकित न करें। हम यदि इतने पतित हो गये हैं तो रहें, किन्तु उस आदर्श जीवन से दूसरों को तो प्रेरणा लेने देवें। यदि हम श्रीकृष्ण के सदृश नहीं बन सकते तो न बनें, किन्तु श्रीकृष्ण को अपने सदृश नराधम तो न बनायें। यदि वे ऐसा विचार करते तो वे पापरत ही क्यों होते। ठीक ही कहा है कि "स्वार्थी दोषं न पश्यति।" अर्जुन के साथ कर्ण के युद्ध में जब कर्ण के रथ का चक्र कीचड़ में धंस गया और कर्ण ने धर्म की दुहाई दी, उस समय श्री कृष्ण ने कर्ण के लिये जिन शब्दों का प्रयोग किया था, क्या श्री कृष्ण के पावन चरित को दूषित करने वाले भी उन्हीं शब्दों के अधिकारी नहीं हैं :—

प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना, निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्।।
अर्थात् जो पामर जन होते हैं, वे बुरे व्यसनों में फंसकर भाग्य को बुरा बताते हैं, अपने दुष्कर्मों को नहीं। आज इन महापुरुषों के जीवनों को कलंकित करने का ही यह परिणाम है कि इस समय कुछ विदेशी शक्तियां श्रीकृष्ण के प्रति घृणाभाव फैलाकर उन्हें ईसा-मूसा की भेड़-बकरियों में बड़ी तेजी से मिला रही हैं। क्या आर्य-जाति के इस क्रमिक विनाश को देखते हुए भी श्रीकृष्ण के तथाकथित भक्त सचेत नहीं होंगे ? क्या आर्य संस्कृति को समूल नष्ट करने के इन गुप्त षड्यन्त्रों को वे आंखें बन्द करके सहते ही रहेंगे ? क्या अब भी उनकी यह उन्मादपूर्ण निद्रा भंग नहीं होगी ? विधर्मी लोग तो रामकृष्ण के भक्तों को विधर्मी बनाकर हमारे राष्ट्ररूपी शरीर को क्षत-विक्षत करने में लगे हैं ? यदि भविष्य में भी ऐसा ही विनाश का क्रम जारी रहा और हम नहीं चेते, तो भविष्य में राम-कृष्ण का कोई नामलेवा भी शायद ही रह पायेगा।

इसलिए इस पावन-पर्व पर समस्त कृष्ण-भक्तों को श्रीकृष्ण के उदात्त-चरित पर निष्पक्ष भाव से विचार करना चाहिये और श्रीकृष्ण

के दूषित काल्पनिक चरित का परित्याग कर अपनी जाति एवं राष्ट्र की एकता बनाने के लिये अपने भूले भटके भाइयों को भी श्रीकृष्ण के आदर्श चरित को वताकर, समझाकर अथवा सुनाकर अपने हृदय से लगाना चाहिये। आज की यह वहुत वड़ी सामयिक चेतावनी समस्त राम-कृष्ण के भक्तों के सामने आई हुई है कि आज अशान्ति और दुख की विभी-षिकाओं से त्रस्त मानव जाति को किस कृष्ण की आवश्यकता है ? सुदर्शनधारी श्री कृष्ण चाहिये या वंशीवादक ? महाभारत के ज्ञान-वल में सर्वातिशायी कृष्ण चाहिये या ब्रजबालाओं के साथ रास करने वाला कृष्ण ? गदा एवं मल्लविद्या का मर्मज्ञ वीर कृष्ण चाहिए या भागवत का चोर-जार शिरोमणि कृष्ण ? योगेश्वर व निर्भय कृष्ण चाहिए या स्नान करती हुई गोपबालाओं से रंगरेलियाँ करने वाला कृष्ण ? कंस, शिशुपाल, शाल्व, जरासन्धादि अत्याचारी आसुर वृत्ति के व्यक्तियों का विध्वंसक वीर कृष्ण चाहिए या कुब्जादासी और परस्त्रियों से समागम करने वाला कृष्ण ? धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश करने वाला कृष्ण चाहिये या माखन चोर कृष्ण ? कंस और जरासन्ध जैसे दुष्टों का हनन करके उनके राज्यों को स्वयं न हड़पकर उन्हीं के परिवार के योग्य व्यक्तियों को सौंपकर त्याग वृत्ति का आदर्श प्रस्तुत करने वाला कृष्ण चाहिए अथवा गोपबालाओं के मक्खनादि छीनकर खाने वाला कृष्ण ?

१९वीं शताब्दी में लगभग पांच हजार वर्षों के पश्चात् इस देश में एक ऐसा महान् आदर्श ऋषि पैदा हुआ, जिसने न केवल इस देश की मृततुल्य आर्यजाति को वेदामृतरूपी संजीवनी पिलाकर पुनर्जीवित किया, प्रत्युत इस देश की महान् वैदिक संस्कृति का रक्षक वनकर अवैदिक संस्कृति को देश से उखाड़ फेंका। उसी महामानव ने बहुत ही प्रखर बुद्धि से परख करके और वैदिक ज्ञान की स्वच्छ धारा में स्नान कराकर अज्ञान, मिथ्याज्ञान व भ्रान्तियों के दूषित मलों को दूर किया तथा हमारे गौरव-पूर्ण अतीत इतिहास का भी स्मरण कराया। उसी सच्चे जौहरी ने हीरे के तुल्य उज्ज्वल श्रीकृष्ण के उदात्त चरित को पढ़कर सर्वप्रथम यह प्रमाणपत्र दिया—'**श्रीकृष्ण का गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा-इत्यादि।**' महर्षि के प्रमाणपत्र को पढ़कर ही प्रस्तुत 'योगेश्वर श्री कृष्ण' विशेषांक प्रकाशित करने की भावना प्रबल हुई और जब महाभारत को उठाकर देखा तो महर्षि के वचनों की यथार्थता के प्रति श्रद्धा और बढ़ गई। ऐसे आदर्श व निष्कलंक श्रीकृष्ण के

जीवन पर भी जो परवर्ती काल में ऋषियों के नाम लिखे भागवतादि ग्रन्थ हैं, उन्होंने मनमाने दोष लगाये हैं, यह बहुत आश्चर्य की बात है। महाभारत में, जो इस समय उपलब्ध है, यद्यपि उसमें स्थान-स्थान पर प्रक्षेप, परस्पर विरोधी कथन एवं असंगत बातें लिखी मिलती हैं, परन्तु उसमें श्रीकृष्ण का आदर्श-जीवन अब भी कलंकरहित ही मिलता है। महाभारत में वर्णित श्रीकृष्ण का उत्तमचरित ही जन-सामान्य के समक्ष रखना इस अंक का प्रमुख उद्देश्य है।

इस अंक के पाठकों ने यह प्रश्न भी किया है कि आपने अगस्त १६८५ में भी यह विशेषांक निकाला था, अब भी वही प्रकाशित कर रहे हो, इससे क्या लाभ है ? किसी ग्रन्थ विशेष पर विशेषांक निकालते तो अच्छा रहता। इसका समाधान यह है एक तो वह विशेषांक इतना जन-प्रिय हुआ, कि उसकी एक भी प्रति शेष नहीं रही और लोगों की मांग बनी रही, उसको पूर्ण करने के लिये यह दुबारा छापना पड़ा। द्वितीय संस्करण की अपनी अन्य विशेषता भी है। प्रथम संस्करण में विद्वानों के लेख ही थे। इसमें हमने श्रीकृष्ण का जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त का संक्षिप्त जीवनचरित भी देने का प्रयास किया है। तीसरी बात यह है कि महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ को हम इन छोटे-छोटे अंकों में कैसे भर सकते हैं ? हम उसे जितनी बार भी पढ़ते हैं, उतनी बार कुछ न कुछ नवीनता हमें मिलती है और पाठकों को भी अवश्य मिलेगी, ऐसी हमें आशा है।

आभार प्रदर्शन—इस अंक में जिन विद्वानों के खोजपूर्ण लेख छापे हैं, उनका हम हृदय से आभार मानते हुए उनके उत्तम स्वास्थ्य की कामना करते हैं। प्रभु उन्हें इसी प्रकार जनहित के कार्यों में शक्ति व साहस देते रहें। जीवन चरित के संग्रह में महाभारत का तो सहयोग पदेपदे लिया ही गया है, साथ ही श्री पं० चमूपति द्वारा लिखित योगेश्वर कृष्ण, श्री डा० भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित 'श्री कृष्ण चरित' और श्री प्रेमभिक्षु जी द्वारा लिखित 'शुद्धकृष्णायन' का पर्याप्त सहयोग लिया है, एतदर्थ मैं इन विद्वानों का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूं, उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। साथ ही आर्ष-साहित्य प्रचार ट्रस्ट के अधिकारियों का भी धन्यवाद करता हूं कि वे ऐसे जनहितैषी कार्यों पर न केवल आर्थिक ही, प्रत्युत सभी प्रकार का सहयोग देकर सदा ही मेरा उत्साहवर्धन करते रहते हैं। हमें आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि श्री कृष्ण के उत्तम चरित के उपासक व भक्त इस पुस्तक को हृदय

से पूर्व की भांति अपनायेंगे और श्री कृष्ण के उत्तमचरित को जन-जन तक पहुंचाने में पूर्ण सहयोग करते रहेंगे।

दिनांक : भाद्रपद कृष्णा
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
सं० २०४६ वि०
२४ अगस्त १९८९

विदुषामनुचर
राजवीर शास्त्री

शेरे पंजाब लाला लाजपतराय ने कहा है

"संसार में महापुरुषों पर उनके विरोधियों ने अत्याचार किए, परन्तु श्रीकृष्ण एक ऐसे महापुरुष हैं, जिन पर उनके भक्तों ने ही लांछन लगाये हैं।"

महाभारत की उपयोगिता

भारत देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है। इस देश का इतिहास यद्यपि काल की कुटिल गति के कारण अथवा विदेशी आक्रांताओं की दुरभिसन्धि के कारण ऐतिहासिक ग्रन्थ ही नहीं प्रत्युत प्राचीन समस्त वाङ्मय के प्रायः नष्ट-भ्रष्ट होने से हमें क्रमबद्ध नहीं मिलता। जिस देश व जाति का इतिहास गौरवमय होता है, वह देश व जाति गौरवपूर्ण इतिहास को पढ़कर कभी पराधीन नहीं रह सकती, अतः विदेशी आक्रान्ताओं ने इस देश के इतिहास व ऐतिहासक स्थानों को प्रायः नष्ट भ्रष्ट कर दिया, जिसके कारण ठीक ठाक इतिहास का ज्ञान करना अतीव दुष्कर कार्य है, पुनरपि इधर-उधर पुस्तकों में प्रसंगागत स्थलों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह देश विश्व में महान्, विश्व गुरु तथा ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र बनकर अवश्य रहा था। इस देश की संस्कृति व सभ्यता बहुत प्राचीन व गौरवमय रही थी।

आर्यावर्त्त के इतिहास में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तथा योगेश्वर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, ये दो नाम नभ में जाज्वल्यमान नक्षत्रों की भाँति ऐसे अद्वितीय रत्न हैं, जिनका अनुकरणीय आदर्श जीवन धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों को युग-युगान्तर तक यावच्चन्द्र-दिवाकरौ पर्यन्त मार्गदर्शन, सत्प्रेरणा, जीवनज्योति तथा ज्ञान-ज्योत्सना देकर अनुप्राणित करता रहेगा। इन दोनों ही महापुरुषों ने अपने सच्चरित्र की अमिट छाप भारत देश में ही नहीं प्रत्युत विश्वजनीन जन-मानस पर ऐसी छोड़ी है कि जिनकी कथा प्राचीन होकर भी नवीनता को संजोये हुए विश्व के जन-जन में रंक से लेकर राजा तक सभी को अतिशय रुचिकर हो रही है और उनकी संजीवनो जीवनी-कथा देश काल व दिशाओं की सीमाओं का अतिक्रमण कर सार्वभौमिक बन गई है और अतीत में पराधीन भारत की जनता के लिए तो निराशाओं में आशा को प्रवाहित कर मृतप्राय जीवनों में अमृतवर्षा करती रही हैं तथा इस देश को पावन संस्कृति

का मूलस्रोत बनकर हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक समस्त देश को एकता व अखण्डता का पाठ पढ़ाती रही है।

इन दोनों ही महापुरुषों के जीवन का अनुशीलन करने से पता लगता है कि इनके जीवनों का उद्देश्य एक ही था—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

अर्थात् दुर्जनों को दण्डित करके सज्जनों की रक्षा करना तथा धार्मिक मर्यादाओं को स्थापित करना। इसी लक्ष्य को लेकर दोनों ही महापुरुषों ने अपने अपने समय की विषम परिस्थितियों से संघर्ष करते अपने पुरुषार्थ, पराक्रम, नीति, ऊहा तथा ज्ञान के बल से अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त की। इतिहास के वेत्ताओं ने इन महापुरुषों की विशेषताओं को क्रमशः द्वादश कलावतार एवं षोडश कलावतार कहकर प्रकट किया है, जिसे हम छोटे बड़े के भाव से नहीं प्रत्युत सूर्यवंशी को सूर्य की बारह राशियों के कारण तथा चन्द्रवंशो श्रीकृष्ण को चन्द्रमा की सोलह कलाओं के कारण ही जान सकते हैं। श्रीराम के पावन आदर्श जीवन को यदि रामायण घोषित कर रही है तो योगेश्वर श्रीकृष्ण के कर्मठ जीवन को महाभारत ही घोषित करता रहेगा। महाभारत इतिहास की दृष्टि से ही नहीं श्रीकृष्ण की कुशल नीतियों, आध्यात्मिक उपदेशों, राष्ट्रीय धर्मों, वर्णाश्रम धर्मों, व्यक्तिगत व सामाजिक व्यवहारों के तत्त्वज्ञान का अद्वितीय ग्रन्थ है और कुछ तो महाभारत को पंचमवेद ही कहने लगे हैं। इन्डोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, इण्डोचोन आदि देशों में भी महाभारत की कथा भारत की तरह लोकप्रिय बनी हुई है। महाभारत के विषय में निम्न उक्ति तो यथार्थ चित्रण कर रही है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥

अर्थात् मनुष्य जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) के विषय में जो कुछ महाभारत में है, वही अन्य ग्रन्थों में है और जो इसमें नहीं है तो फिर कहीं भी नहीं है। यद्यपि यह कथन अतिशयोक्ति से पूर्ण है पुनरपि कवियों की अतिशयोक्ति में बहुत कुछ सत्यता भी होती है।

महाभारत की ऐतिहासिकता

योगेश्वर श्रीकृष्ण द्वापर के अन्त में महाभारत के समय में हुए और उनके प्रामाणिक इतिहास का आधार भी महाभारत पुस्तक ही है। इसके अतिरिक्त यद्यपि श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र हरिवंश, भागवत, विष्णुपुराण आदि में भी मिलता है, किन्तु ये ग्रन्थ अत्यन्त परवर्ती, काल्पनिक तथा श्रीकृष्ण के जीवन को दूषित करने वाले हैं, अतः प्रामाणिक नहीं हैं। वर्तमान युग के महान् सुधारक महर्षि दयानन्द ने सदाचार के धनी, वेद-वेदांगों के ज्ञाता, आदर्श साम्राज्य के निर्माता, शूरशिरोमणि योगेश्वर श्रीकृष्ण के विषय में बहुत ही यथार्थ लिखा है—

"श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुणधर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं।··· इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मत वाले भी कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?"

[स० प्र० ११ वां समुल्लास]

परन्तु आज के पाश्चात्य जगत् से प्रभावित तथा अपने इतिवृत्त से अनभिज्ञ तथाकथित कुछ ऐतिहासिक पुरुष महाभारत को काल्पनिक ग्रन्थ ही मानने व लिखने का साहस करने लगे हैं। यद्यपि अब भी महाभारतकालीन अवशेष जो अब चाहे खण्डरात के रूप में ही क्यों न हों, जैसे दिल्ली में पाण्डवों का किला, मेरठ में हस्तिनापुर, बरनावे [मेरठ] में लाक्षागृह, कुरुक्षेत्र में युद्धकालीन विभिन्न स्मृति चिह्न अब भी उपलब्ध होते हैं और भारतीय साहित्य तो महाभारत की घटनाओं तथा श्रीकृष्ण की जीवन गाथाओं से ओतप्रोत मिलता है, पुनरपि परमुखापेक्षी मानस्वरूप में सर्वथा परतन्त्र बने भारतीय लोग भी जब सच्चाई को स्वीकार करने में आनाकानी करते हैं, तब बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है।

महाभारत का स्वरूप—

वर्तमान में उपलब्ध महाभारत का पोथा एक गदहे का भार जितना मिलता है किन्तु इसका यह विशाल रूप बीच-बीच के प्रक्षेपों के कारण हुआ है महर्षि दयानन्द इसके स्वरूप के विषय में लिखते हैं—"राजा भोज के बनाये सजीवनी नामक इतिहास में······स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पाँच सहस्र छः सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण से भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय पच्चीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा हो जाएगा।"

(स० प्र० एकादशसमुल्लास)

इस प्रमाण से यह तो स्पष्ट है कि महाभारत में समय-समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं, किन्तु यह सर्वथा काल्पनिक नहीं है। आर्यजगत् के माननीय विद्वान श्री क्षितीश वेदालंकार ने उपर्युक्त तथ्य को ही प्रकारान्तर से स्पष्ट करते हुए लिखा है—"महर्षि व्यास ने जो ग्रन्थ सुगुम्फित किया था, उसका नाम जय था और उसमें केवल आठ हजार श्लोक थे। उसके बाद उनकी शिष्य परम्परा में महर्षि वैशम्पायन ने इस ग्रन्थ का विस्तार करके इसके श्लोकों की संख्या तीन गुनी अर्थात् चौबीस हजार तक पहुंचा दी। "जय" नामक ग्रन्थ में यदि एक ही कुल की जय और पराजय पर ध्यान केन्द्रित किया गया था तो वैशम्पायन के समय 'भरत' नाम से जो ग्रन्थ तैयार हुआ उसमें समूचे भारतवंश का इतिहास समाविष्ट हो गया। वैशम्पायन के पश्चात् उनके शिष्य परम्परा के सौति और लोमहर्षण ने इस ग्रन्थ का विस्तार करके इसकी संख्या एक लाख श्लोकों तक पहुंचा दी। तब इसका नाम 'महाभारत' पड़ा।" और महाभारत के आदि पर्व [१/१०२] में लिखा है—'चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारत संहिताम्।' इससे प्रतीत होता है कि व्यास जी ने २४ हजार श्लोक बनाये थे। ['योगेश्वर श्रीकृष्ण' से]

महाभारत काल निर्णय—

श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता 'महाभारत' की प्रामाणिकता पर ही निर्भर है, अतः महाभारत की ऐतिहासिकता पर विचार करना आवश्यक है। यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों एवं उन्हीं का अनुगमन करने वाले भारतीयों

ने महाभारत में हुए परवर्ती प्रक्षेपों के कारण महाभारत को महत्त्व नहीं दिया है, किन्तु महाभारत में आये प्रक्षेपों के विकृत भाग को छोड़ने पर इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर सन्देह का अवसर नहीं रहता है। पाश्चात्य विद्वानों के वक्तव्य में पूर्वाग्रह तथा पूर्व निर्धारित धारणा भी विशेष कारण बनी है। जैसे – वेदों का रचनाकाल ३-४ हजार वर्ष पूर्व ही मानना, आर्यों का मूल निवास मध्य एशिया अथवा अन्यत्र मानना, आर्य सभ्यता को जंगलियों की सभ्यता बताना, आर्यों से पूर्व द्रविड जाति का भारत में निवास मानना, इत्यादि बातें उनके पूर्वाग्रहों को ही द्योतित करती हैं। और पाश्चात्य विद्वानों की महाभारत के विषय में कहीं बातें तथ्यविहीन हैं।

जैसे—[क] महाभारत कथा को उपन्यास मात्र मानना [वेवर, मोनियर, विलियम्स, ह्वीलर]

[ख] द्वारिका और हस्तिनापुर के मध्य १४०० मील का अन्तर कल्पित बताना।

(ग) चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में नियुक्त यूनानी राजदूत मेगास्थनीज द्वारा महाभारत का अपनी यात्रा पुस्तक में उल्लेख न करना। (जर्मन विद्वान् वेबर)

(घ) बौद्धशास्त्रों में श्रीकृष्ण का उल्लेख न होना (फ्रांसीसी विद्वान् बोसफ)

(ङ) 'अनासक्तियोग' नामक गुजराती भाष्य में—'महाभारत को अर्थों में मैं इतिहास नहीं मानता। गीता के कृष्ण मूर्त्तिमन्त शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान हैं, परन्तु काल्पनिक हैं। सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं। अवतार का आरोपण पीछे से किया गया है।' इसी प्रकार बालगंगाधर तिलक, रामकृष्णगोपाल भण्डारकर, महात्मा गांधी, डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र आदि विद्वानों की धारणायें भी पाश्चात्यों से प्रभावित रही हैं। परन्तु उनके विचारों पर शान्तबुद्धि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि ये धारणायें सर्वथा निर्मूल हैं। जैसे बंगाली साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र ने भारतीय साहित्य को बदनाम करने वाली पाश्चात्यों की बुरी प्रवृत्ति का भण्डाफोड़ करते हुए लिखा है—"संस्कृत साहित्य में विद्यमान भारत के गौरव की अभिवृद्धि करने वाली बातों को तो यूरोपीय विद्वान् कवियों की मिथ्या कल्पना या अलंकार योजना कहकर उड़ा देना चाहते हैं, परन्तु यदि इसी साहित्य में उन्हें कोई ऐसी बात दीख पड़े जो भारतवासियों को कलंकित करने वाली होती है तो वे उसकी सत्यता का डिंडिम घोष करने

से नहीं चूकते। उदाहरणार्थ—भारत के पाण्डव जैसे वीर पुरुषों की कथा मिथ्या है और पाण्डव कवि की कल्पना मात्र हैं, परन्तु पाण्डव पत्नी द्रौपदी का पांच पतियों से विवाह होना सत्य है, क्योंकि इससे यह सिद्ध होता है कि पुराने भारतवासी असभ्य थे और उनमें स्त्रियों में बहुपतिविवाह प्रचलित था।"

और यूनानी राजदूत की भारत यात्रा के कतिपय प्रसंग ही कतिपय ग्रन्थों से लेकर छापे गये हैं, किन्तु मूल ग्रन्थ न मिलने से वेबर का कथन स्वयं कल्पित ही है। और अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी की भी मान्यता सम्भवतः अहिंसा के कारण बनी हो। इसीलिये उन्होंने महाभारत को अच्छी बुरी प्रवृत्तियों का द्वन्द्वयुद्ध मान लिया हो। परन्तु आगे कहे ऐतिहासिक तथ्यों से इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता को कदापि झुठलाया नहीं जा सकता।

महाभारत की ऐतिहासिकता में प्रमाण—(१) महर्षि-दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' में आर्यावर्त्तीय (महाभारत के परवर्त्ती) राजाओं की वंशावली, उनका राज्य शासनकाल (वर्षों व दिनों में) किन्हीं प्राचीन पत्रिकाओं के आधार पर लिखी हैं, जिसमें महाराज युधिष्ठिर से लेकर राजा यशपाल पर्यन्त (संवत् १२४९) राजाओं का वर्णन विद्यमान है और उसके बाद मुस्लिम शासकों का समय आ जाता है। इस प्रकार महाभारत से लेकर मुस्लिम काल तक के १२४ राजाओं के लगभग चार हजार एक सौ अठावन वर्षों का इतिहास 'महाभारत' को ऐतिहासिक सिद्ध करता है।

श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने स० प्र० में एक टिप्पणी देते हुए लिखा है—"कलिसंवत् का आरम्भ महाराजा युधिष्ठिर के राज्य के अन्त में श्रीकृष्ण के स्वर्गवास के पश्चात् हुआ था। विक्रमसंवत् कलिसंवत् के ३०४४ के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। ये दोनों बातें भारतीय कालगणनानुसार सर्वसम्मत हैं। कलिसंवत् ३०४४ में वि० सं० १२४९ (महाराजा पृथ्वीराज पर्यन्त) जोड़ने पर ४२९३ वर्ष बनते हैं।

(३) महाभारत के प्रसिद्ध अनुसन्धानकर्त्ता रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य ने "महाभारत-मीमांसा" नामक पुस्तक में पाश्चात्य विद्वानों की कल्पनाओं का सप्रमाण खण्डन करते हुए महाभारत की ऐतिहासिकता सिद्ध की है।

---

१. श्री डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित 'श्रीकृष्णचरित' से।

(४) भारतीय वाङ्मय की प्रसिद्ध तथा प्रामाणिक पुस्तकों के उद्धरण

(१) **पाणिनीय अष्टाध्यायी**— महर्षि पाणिनि के समय महाभारतकालीन व्यक्तियों (पात्रों) का ज्ञान था। पाणिनि का समय ईसा से एक हजार वर्ष से २००० हजार वर्ष पूर्व तक माना गया है। पाणिनि के निम्न सूत्रों में महाभारत सम्बन्धी संकेत मिलते हैं—

गवियुधिभ्यां स्थिरः (अ० ८।३।९५) में युधिष्ठिर शब्द
स्त्रियामवन्तिकुन्ति कुरुभ्यश्च (अ० ४।१।१७४) में कुन्ती शब्द
वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् (अ० ४।३।९८) में वासुदेव और अर्जुन
महान् व्रीह्यपराह्व (अ० ६।२।३८) में 'भारत' शब्द तथा
गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो० (अ० ४।३।९९) के उदाहरणों में नाकुलक ? साहदेवक इत्यादि महाभारतकालीन शब्दों की प्रसिद्धि मिलती है।

(२) **व्याकरण-महाभाष्य** — पाणिनीय अष्टाध्यायी पर महर्षि पतञ्जलि ने 'महाभाष्यम्' ग्रन्थ लिखा है। इसमें महाभारत के उद्धरणों, पात्रों व घटनाओं का पुनः पुनः उल्लेख मिलता है। जैसे—

(क) जघान कंसं किल वासुदेवः। असाधुर्मातुले कृष्णः। संकर्षण-द्वितीयस्य बलं कृष्णस्य वर्धताम्। अक्रूरवर्ग्यः। अक्रूरवर्गीणः। वासुदेव-वर्ग्यः। वासुदेववर्गीणः। इत्यादि स्थलों पर महाभारतकालीन व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है।

छान्दोग्योपनिषद्— उपनिषदों का समय तो पाणिनि मुनि से भी प्राचीन है। छान्दोग्य-उपनिषद्[1] में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण तथा उनके गुरु घोर आंगिरस का उल्लेख मिलता है—

अथैतद् घोर-आंगिरस कृष्णाय देवकीपुत्राय उक्त्वा उवाच।
(छान्दो० ३।१६।६)

---

१. छान्दोग्योपनिषद् शतपथ ब्राह्मण के समकालीन है। और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—'कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्ये न च्यवन्ते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्ये दिशश्च्यवन्ते।' अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र में अग्नि का आधान करे। यह नक्षत्र पूर्व दिशा में च्युत नहीं होता, अन्य होते हैं। भारतीय ज्योतिष के अनुसार यह स्थिति ईसा से ३००० वर्ष पूर्व थी। अतः छान्दोग्य में कहे श्री कृष्ण का समय भी ईसा से ३००० वर्ष से भी अधिक पूर्व बनता है।

यहाँ महाभारतकालीन देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का ही वर्णन किया गया है।

(५) यूनानी यात्री मेगास्थनीज ने अपनी भारतयात्रा प्रसंगों में भारतीय नामों को अपने ढंग से लिखा है—'मथुरा में शौरसेनी लोग रहते हैं और वे हिरावलीज की पूजा करते हैं। यह हिरावलीज शब्द श्रीकृष्ण के लिये ही प्रयोग किया गया है। और यवनयात्री उस समय की साक्षियों के आधार पर लिखता है कि वह (श्रीकृष्ण) डायोनिसियस से १५ पीढ़ियाँ पीछे हुए। डायोनिसियस से चन्द्रगुप्त तक (जिसके यहां वह दूत बनकर आया था) १५३ पीढ़ियों का अन्तर है। अर्थात् श्रीकृष्ण चन्द्रगुप्त से १५३—१५ = १३८ पीढ़ी पूर्व हुए। ऐतिहासिकों की परम्परा के अनुसार बीस वर्ष की एक पीढ़ी मानी जाये तो १३८ × २० = २७६० वर्ष (श्रीकृष्ण से चन्द्रगुप्त तक) होते हैं और चन्द्रगुप्त ईसा से ३१२ वर्ष पूर्व हुए हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण को आज १९८९ ई० में निम्नलिखित वर्ष हुए हैं—

चन्द्रगुप्त से पूर्व वर्ष —	२७६०
चन्द्रगुप्त से ईसा तक वर्ष —	३१२
आज ईस्वी सन् —	१९८९
योग —	५०६१ वर्ष

(६) राजतरङ्गिणीकार कल्हण की मान्यता—संस्कृत वाङ्मय में राजतरङ्गिणी एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ है। उसमें लिखा है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ
षड्द्विक पंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ (राज० १।५६)

अर्थात् (अंकानां वामतो गतिः) नियमानुसार युधिष्ठिर का समय शककाल में २५२६ वर्ष मिलाने से निकलता है। शाक्यमुनि बुद्ध का अब संवत् २५६३ है। इस गणना से २५२६ + २५६३ = ५०८९ वर्ष पूर्व बनता है। और दूसरे स्थान पर लिखा है—

भारतं द्वापरान्तेऽभूत् ॥ (राज० १।४९)
अर्थात् महाभारत का युद्ध द्वापर के अन्त में हुआ था।

(७) महाभारत की अन्तःसाक्षी—

(क) शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव !
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥

निवृत्तमात्रे त्वयनमुत्तरे वै दिवाकरे ।
समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः ।। (शान्ति पर्व ४७।३४)

अर्थात् वैशम्पायन जनमेजय से कहते हैं--हे राजन् ! जब दक्षिणायन समाप्त हो गया और सूर्य उत्तरायण में आ गया, तब माघ मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में मध्याह्न के समय भीष्म पितामह ने ध्यानमग्न होकर अपने आत्मा को परमात्मा में लगाया। ज्योतिष की गणनानुसार नक्षत्रों की यह स्थिति ईसा से ३१३९ वर्ष पूर्व ही हो सकती थी।

(ख) एतत् कलियुगं नामाचिराद् यत् प्रवर्त्तते।। (वनपर्व) भीम-मारुति-संवाद में यह बात कही गई है कि कुछ वर्षों के बाद ही कलियुग का प्रारम्भ हो जायेगा।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है और श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और पाश्चात्य विद्वानों की बातें इस विषय में काल्पनिक एवं पूर्वाग्रहग्रस्त हैं।

(८) यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगम् ।। (विष्णुपुराण० ४।२४।४०)

अर्थात् श्रीकृष्ण की मृत्यु दिन से ही कलियुग प्रारम्भ हुआ है। जिसे आज ५०८९ वर्ष होते हैं। और श्रीकृष्ण महाभारतयुद्ध के बाद ३६ वर्ष जीवित रहे हैं, ऐसा माना जाता है।

(९) अकबर बादशाह के समय में भी इस पर विचार किया गया और आईने अकबरी के २९९ पृ० (कलकत्ता में सन् १८६७ ई. में छपा है।) लिखा है- "कलियुग के लगते ही पहला राजा युधिष्ठिर हुआ था। विक्रम संवत् के प्रारम्भ होने तक युधिष्ठिर को हुए ३०४४ वर्ष व्यतीत हो चुकेथे।" आज वि. सं० २०४६ में ३०४४ वर्ष जोड़ने पर ५०९० वर्ष महाभारत को होते हैं।

श्री डा. हैडगेवार, संचालक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, के विचार--

"श्रीकृष्ण के समान पूर्ण पुरुष को ईश्वर अथवा अवतार की श्रेणी में ढकेल कर हम ऐसी धारणा कर लेते हैं कि उनके गुणों का अनुशीलन हमारी शक्ति के परे है"

श्रीकृष्ण का वंश परिचय

श्रीकृष्ण यदुवंशी थे। भागवत पुराण के अनुसार महाराजा यदु ययाति के पुत्र थे। ययाति के पूर्वज कुछ राजाओं के नाम इस प्रकार मिलते हैं—अग्नि का पुत्र चन्द्र, चन्द्र का पुत्र बुध, बुध का पुत्र इला, इला का पुत्र पुरुनवा, पुरुरवा का पुत्र आयु, आयु का पुत्र नहुष, और नहुष, नहुष का पुत्र ययाति। इन राजाओं में एक राजा चन्द्र भी हुआ, इसलिये ये चन्द्रवंशी कहलाये।

महाराजा ययाति की दो रानियाँ थीं—१. शर्मिष्ठा और २. देवयानी शर्मिष्ठा से द्रुह्य, अनु और पुरु पैदा हुए और देवयानी से यदु और तुर्वसु। इनमें पुरु के वंश में दुष्यन्त, भरत, कुरु आदि राजा उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर आदि कौरव इसी वंश में उत्पन्न हुए और यदु की सन्तान यादव कहलायी। यदु वंश में एक राजा मधु हुए, जिसके कारण यदु-वंशी माधव भी कहलाने लगे। एक प्रकार से यादव व माधव कालान्तर में एक ही वंश के नाम प्रसिद्ध हो गये।

यदुवंशी राजाओं के दो उपवंश चले—वृष्णि और भोज श्रीकृष्ण वृष्णियों में होने से वार्ष्णेय कहलाये। श्रीकृष्ण के दादा का नाम शूर था, शूर का बड़ा लड़का वसुदेव था और वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। दूसरे उपवंश भोज के फिर दो भेद हुए एक कुकुर और दूसरे अन्धक। श्रीकृष्ण की माता देवकी कुकुर वंश की थी। यादव कुल का राज्य उस समय कुकुर राजाओं के हाथ में था। माता देवकी के पिता देवक थे और देवक के भाई उग्रसेन यादवों की राजधानी मथुरा के राजा थे। राजा उग्रसेन का पुत्र कंस था, जो बुरे स्वभाव का था, अतः वह अपने पिता को कारागार में डालकर स्वयं राजा बन गया।

यादवों की राज्य पद्धति संघ के ढंग की थी। ये किसी भी एक राजा की आज्ञा से चलते थे, किन्तु सभी को राज्य के कार्यों में निर्णय देने का पूर्ण अधिकार होता था। जिस समय उग्रसेन राजा थे, उस समय

ही यादवों में परस्पर कुछ मतभेद पैदा हो गये थे। उग्रसेन के पिता आहुक और वृष्णिकुल के अक्रूर में आपस में बहुत मतभेद हो गया था। श्रीकृष्ण अपने जीवन काल में इन दोनों दलों में बीच-बचाव करके एकता बनाने का प्रयास करते रहते थे।

श्रीकृष्ण जिस वृष्णियों के वंश में पैदा हुए, उसकी कुल परम्परा से कुछ विशेषताओं का वर्णन महाभारत में कहीं-कहीं मिलता है, उससे उनके वंश की अनेक विशेषतायें हमें मिलती हैं ? जैसे द्रोण पर्व (४४। २४-२८) में लिखा है—

"ये कृष्णीवंशी सदा वृद्धों की आज्ञा में चलते हैं। अपने भाइयों का अपमान कभी नहीं करते। ब्राह्मण, गुरु और सजातीयजनों के धनों के प्रति अहिंसा-भाव रखते हैं। धनवान होकर भी अभिमान रहित होते हैं। परमेश्वर के भक्त तथा सत्यवादी होते हैं। ये सदा समर्थों का सम्मान करके भी दीनों के सहायक रहते हैं। और आत्मश्लाघा न करते हुए सदा संयमी एवं दानशील रहते हैं। इसलिये वृष्णि-वंशी वीरों का राज्य नष्ट नहीं होता है।"

और श्रीकृष्ण के सुपुत्र प्रद्युम्न ने भी वन पर्व (१८।१३-१४) में राजा शाल्व के साथ युद्ध करते हुए अपने सारथी दारूक से वृष्णी वंशियों की विशेषतायें बताते हुए कहा था—

जो युद्ध के मैदान में पीठ दिखाये, वह वृष्णी वंश में पैदा नहीं हुआ। और जो युद्ध गिरे हुए पर, शरणागत पर, बूढ़े पर, रथ या शस्त्रविहीन पर प्रहार करे, वह वृष्णी वंश का नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण का जन्म

ऐसे श्रेष्ठ वृष्णिवंश में हमारे चरित्रनायक का जन्म आज से पांच हजार दो सौ पन्दरह (५२१५) वर्ष पूर्व भाद्रपदमास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन, रोहिणी नक्षत्र में उस समय हुआ, जब कि वर्षा ऋतु होने से आकाश मेघाच्छन्न तथा घोर विद्युत् गर्जना हो रही थी। पुराणों में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—वसुदेव और देवकी जब विवाह के पश्चात् लौट रहे थे और देवकी का चचेरा भाई कंस प्रेमवश स्वयं रथ चला रहा था। उस समय यह आकाशवाणी हुई कि—"मूर्ख कंस ! तू जिसे रथ में बैठाकर लिये जा रहा है, उसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र तुझे

मारेगा।" आकाशवाणी को सुनते ही कंस क्रोध में होकर देवकी को तलवार खींचकर मारने लगा। वसुदेव ने कंस को समझाया कि वह क्रोधवश होकर निर्दोष देवकी को न मारें। देवकी से उत्पन्न सभी बच्चों को जन्म के पश्चात् ही तुम्हें सौंप दिया करेंगे। कंस को इतने पर भी संतोष नहीं हुआ और उसने वसुदेव व देवकी को अपने कारागार में डाल दिया। क्रमशः देवकी से छः सन्तानें हुई जो पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार कंस को सौंपी गई। निर्दयी तथा मृत्यु के दुःख से त्रस्त कंस सभी पुत्रों को निर्दयता से मारता रहा। सातवीं सन्तान गर्भ में ही नष्ट हो गई थी। माता देवकी ने आठवीं सन्तान (श्रीकृष्ण) को आधी रात के समय में जब जन्म दिया, तो उसकी सुरक्षार्थ वसुदेव रात्रि में ही यमुना के दूसरे किनारे गोकुल में बाबा नन्द के घर ले गये और उनकी सद्योजात पुत्री को लाकर देवकी के पास सुला दिया। यह सब घटना अतिशय चमत्कारिक ढंग से पुराणों में वर्णन की गई है। दूसरे दिन प्रातः ही देवकी से उत्पन्न कन्या का समाचार कंस को मिला और कंस ने देवकी को करुणाभरी बातों को अनसुनी करके उसे भी पत्थर पर पटककर बड़ी निर्दयता से मार दिया।

उपर्युक्त श्रीकृष्ण के जन्म के समय का वर्णन क्योंकि महाभारत में नहीं मिलता है, अतः पुराणों के आश्रय से लिखा गया है।

श्रीकृष्ण के शैशवकाल की घटनायें

दैवयोग से जन्म के पश्चात् ही श्रीकृष्ण मथुरा से गोकुल पहुँचा दिये गये। किंवदन्ती के अनुसार ऐसा कहा जाता है जिस समय कंस वसुदेव की आठवीं सन्तान को मारने लगा था, तब देवकी ने कंस से बच्ची को न मारने के लिये बहुत आग्रह किया था, किन्तु बार-बार कहने पर भी जब वह नहीं माना तो देवकी ने उससे यह बात कही कि—दुष्ट कंस! तेरी मृत्यु सन्निकट आ गई है। तुझे मारने वाला पैदा हो गया है। कहीं इस बात को अलौकिक बनाने के लिये आठवीं कन्या के द्वारा ही आकाश में जाकर यह बात कहलवाई गई है। कंस अपनी मृत्यु की बात सुनकर भयभीत हो गया और सुबह ही मन्त्रियों से मन्त्रणा करने लगा। कंस के मन्त्री भी कंस जैसे ही निर्दयी थे। उन्होंने कंस को सलाह दी—राजन्! आप चिन्ता न करें। हम ऐसी व्यवस्था करा देते हैं कि राज्य में १०-१५ दिनों में जितने भी बच्चे पैदा हुए हैं, सभी को मरवा देते हैं। इसी उद्देश्य से पूतना जैसी राक्षसी या राक्षसों को गुप्तवेश में राज्य में भेजा गया।

इधर गोकुल में माता यशोदा के पुत्र पैदा हुआ है, इसलिये चारों तरफ खुशियां मनायी जा रही थीं। इससे कुछ दिन पूर्व ही माता रोहिणी से बलराम ने जन्म लिया था। दोनों बच्चों का पालन व संरक्षण बहुत सतर्कता से किया जाने लगा। जन्म से दशवें दिन दोनों बच्चों का नाम-करण संस्कार कराया गया।

पूतनावध—

एक दिन दोनों बच्चों की देखभाल का कार्य दूसरों को सौंपकर बाबा नन्द गोकुल से मथुरा में कंस का वार्षिक कर देने के लिये चले गये। इनके पीछे पूतना राक्षसी गोकुल में भेष बदलकर आ गई। सुन्दर व अलंकृत होने से पूतना न समझने के कारण घर में आने से किसी ने उसे रोका नहीं या कोई ध्यान नहीं दिया। इसी बीच पूतना ने पलने में सोये श्रीकृष्ण को गोद में लेकर दूध पिलाने का प्रयास किया। पूतना ने अपने स्तनों पर या तो भयंकर विष का लेप कर रखा था अथवा उसके दूध पीने से ही बच्चे जीवित नहीं रहते थे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस लोकोक्ति के अनुसार श्रीकृष्ण या तो पूतना के छल को समझ गये अथवा बालभाव से पूतना के स्तनों को मुंह में दबाकर ऐसा खींचा कि प्रबल रक्तस्राव होने से पूतना के प्राण ही निकल गये। इस पूतनावध का वर्णन महाभारत में भी आता है—

पूतनाघातपूर्वाणि कर्माण्यस्य विशेषतः
त्वया कीर्त्तयतास्माकं भूयः प्रव्यथितं मनः ।।सभापर्व ४१।४।।

यह बात शिशुपाल ने श्रीकृष्ण पर दोषारोपण करते हुए कही थी। किन्तु भागवतकार ने पूतना का छः कोस का शरीर लिखा है, जिसका खण्डन करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"यदि पूतना का शरीर वास्तव में इतना बड़ा होता तो मथरा और गोकुल दोनों दबकर पोप जी का घर भी दब गया होता।" (स० प्र० ११ वाँ समु०)

शकट-भंजन—महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के अवसर पर श्रीकृष्ण के सम्मान की बात जब आई तो शिशुपाल को अच्छी नहीं लगी और उसने श्रीकृष्ण पर तरह-तरह के दोष लगाये। उनमें ही एक यह है—

चेतना-रहितं काष्ठं यद्यनेन निपातितम्।
पादेन शकटं भीष्म तत्र किं कृतमद्भुतम् ।। (सभा० ४१।८)

अर्थात् यदि श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में अचेतन लकड़ी की गाड़ी को

गिरा दिया, तो हे भीष्म ! इसमें क्या विचित्र बात हुई ? इसी घटना को भागवतकार ने इस प्रकार लिखा है—एक बार एक शकट (छकड़े) के नीचे श्रीकृष्ण को यशोदा ने सुला दिया। श्रीकृष्ण के लात मारने से वह छकड़ा उलट गया और कंस का भेजा हुआ शकटासुर नामक राक्षस मर गया। तथा छकड़े में रखा दूध दही चारों ओर बह गया। यथार्थ में एक टूटा हुआ शकट किसी के सहारे खड़ा कर रखा था। श्रीकृष्ण के लुढ़काने अथवा पैर चलाने से ही वह शकट गिर गया। किन्तु सारे गोकुल में इसकी चर्चा खूब फैल गई थी।

भागवतकार ने तृणावर्त्त राक्षस द्वारा श्रीकृष्ण को लेकर उठाने की घटना, यशोदाजी द्वारा श्रीकृष्ण को ऊखल से बांधना, इत्यादि घटनायें भी लिखी हैं, किन्तु उनका मूल महाभारत में नहीं है। श्रीकृष्ण और बलराम क्रम से बड़े हो गये और गोप-बालकों के साथ खेलने कूदने लगे। मल्ल-युद्ध का अभ्यास भी करने लगे। गोकुल में कंस द्वारा भेजे विभिन्न प्रकार के राक्षसों द्वारा तो उत्पात मचाये ही जा रहे थे। हरिवंश पुराण में भी भेड़ियों का उत्पात भी लिखा है। उस समय बाबा नन्द अपने समस्त परिवार, एवं गोकुल निवासियों को साथ लेकर गोवर्धन पर्वत की ओर वहीं वृन्दावन में रहने लगे। किन्तु कंस के भेजे राक्षसों ने वहां भी शान्ति से नहीं रहने दिया।

वृन्दावन निवासकालीन घटनायें—

भागवतपुराण के अनुसार यहाँ आकर श्रीकृष्ण ने वत्सासुर, बकासुर, अघासुर इत्यादि राक्षसों का वध किया। ये राक्षस पक्षी या सर्प का रूप बनाकर यहाँ आते रहते थे। कुछ भी हो, पर यह तो सत्य है कि कंस के द्वारा भेजे राक्षस अवश्य तरह-तरह का उत्पात मचाते रहते थे और श्रीकृष्ण अपने बालमित्रों के साथ उन सभी को भगाते अथवा मार डालते थे। कहते हैं एक बार एक बैल पागल हो गया और सभी लोग उससे परेशान हो गये। गरीब ग्वाले तो उससे बहुत ही दुःखी हो गये। क्योंकि गायें चराते समय वह जंगल में ग्वालों को बहुत ही परेशान करता था। श्रीकृष्ण ने अपने बाल ग्वालों को साथ में लेकर पहले उसे चारों तरफ से घेर लिया और दौड़ा-दौड़ाकर खूब थका दिया तत्पश्चात् उसके सींग पकड़कर नीचे गिरा दिया और उसे मार दिया। इस पगले बैल का नाम अरिष्ट आता है। इसी प्रसिद्ध घटना को लेकर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण पर 'गोघ्नः स्त्रीघ्नश्च सन्' (सभा० ४१।१६) कहकर दोषारोपण किया है।

इसी प्रकार केशी नामक जंगली घोड़े को उत्पात करने के कारण श्रीकृष्ण ने मारा था। जंगली गधों को भी भगाकर ग्वालों के लिये वह स्थान निरुपद्रव किया था। इस प्रकार जन हितैषी कार्यों से बालक श्रीकृष्ण की ख्याति चारों तरफ फैलने लगी।

पुराणकार ने यहाँ 'कालिय-दमन' की घटना भी लिखी है, किन्तु महाभारत में उसका कहीं भी उलेख नहीं है।

इन्द्र-यज्ञ न करके गोवर्धनयज्ञ—

गोप-गण प्रतिवर्ष परम्परा से होने वाले इन्द्र-यज्ञ करते थे, जिसका उद्देश्य कृषि के लिये वृष्टि कराना होता था। इस इन्द्र यज्ञ का अवसर आने पर श्रीकृष्ण ने गोपों को समझाया कि अब हमें इस इन्द्रयज्ञ (कृषि के लिये) से क्या लाभ है ? हमारी आजीविका का अब गायें और गोवर्धन पर्वत ही साधन है गोवर्धन पर्वत पर पर्याप्त गायों के लिये घास पैदा होती है, जिसे खाकर गायें दूध देती हैं। अतः गोवर्धन पर ही एक सामूहिक यज्ञ किया जाये और विशाल उत्सव क्रीडा प्रतियोगिता प्रीतिभोज आदि का आयोजन किया जाये। ग्वालों ने श्रीकृष्ण की बात मान ली और उस यज्ञ का ऋत्विक् भी श्रीकृष्ण को बनाया गया। गायों व बछड़ों को खूब सजाया गया। बाल ग्वालों ने बड़ी रुचि से खेलों में भाग लिया। इसी अवसर पर सात दिन तक वृन्दावन में अतिवृष्टि हो गई। नदी, नाले सब चढ़ गये। चारों तरफ पानी ही पानी दिखाई देने लगा। यमुना में इतनी अधिक बाढ़ आ गई कि यमुना के निकटवर्ती ग्रामों व बस्तियों में रहना बहुत ही कठिन हो गया। श्रीकृष्ण ने अपनी बाल सेना के सहयोग से गोवर्धन पर्वत पर वृक्षादि को काटकर और हिंस्र जीवों को भगाकर समस्त लोगों को गोवर्धन पर बसाया और उनके खाने पीने की व सुरक्षा की समस्त व्यवस्था की। श्रीकृष्ण रातदिन एक करके बहुत ही परिश्रम से गोवर्धन पर आये लोगों की व्यवस्था में लगे रहे, यही श्रीकृष्ण का गोवर्धन पर्वत को उठाना कहा जाने लगा। वर्षा के पश्चात् बाढ़ का पानी कम होने पर सभी लोग श्रीकृष्ण का हृदय से धन्यवाद करते हुए अपने-अपने घरों पर चले गये।

गोवर्धन की इसी घटना को चमत्कारिक रूप पुराणों में दिया गया है। इन्द्र-यज्ञ न करने से इन्द्र का कुपित होकर अतिवृष्टि करना, श्रीकृष्ण का गोवर्धन पर्वत को हाथ में उठाना इत्यादि बातें बढ़ा-चढ़ाकर ही कल्पना का पुट देते हुए कही गईं हैं अन्यथा इन्द्र का रुष्ट होना गोवर्धन पर्वत को

हाथ पर रखना आदि बातें असम्भव नहीं हैं। गोवर्धन यज्ञ की घटना पर ही आक्षेप करते हुए शिशुपाल कहता है—

वल्मीकमात्रः सप्ताहं यद्यनेन धृतोऽचलः।
तदा गोवर्धनो भीष्म न तच्चित्रं मतं मम ॥ (सभा॰ ४१।६)

अर्थात् दीमक के टीले के समान गोवर्धन पर्वत को श्रीकृष्ण ने सात दिन थामे रखा, हे भीष्म ! मेरी दृष्टि में इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

गोपी-प्रसंग व रासलीलायें मिथ्या हैं—

श्रीकृष्ण का गोपिकाओं से प्रेम का उल्लेख महाभारत में कहीं भी नहीं है, अतः स्पष्ट है कि महाभारत के बहुत बाद में बने पुराणों के लेखकों ने गोपी-प्रसंग की घटना सर्वथा काल्पनिक ही की है। यदि गोपी-प्रसंग में लेशमात्र भी सत्य होता तो राजसूययज्ञ के अवसर पर कुपित शिशुपाल अन्य दोषों के साथ यह दोष भी अवश्य लगाता। श्री पं॰ चमूपति जी ने 'योगेश्वर कृष्ण' पुस्तक में ठीक ही लिखा है—

"महाभारत में गोपीप्रेम की गन्ध भी नहीं है। और तो और किसी प्रसंग में भी कृष्ण की रासलीला का वर्णन नहीं। यहां तक कि महाभारत ने कृष्ण के होठों से वंशी तक न छुवाने की कसम खा ली है। 'महाभारत' का कृष्ण चक्रधर है, गदाधर है, असिधर है, मुरलीधर नहीं।"

अतः भागवत, विष्णुपुराण, हरिवंश पुराण और ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में जो गोपीप्रसंग हैं, रासलीलायें हैं, चीरहरणलीला है, सभी काल्पनिक होने से मिथ्या हैं और श्रीकृष्ण जैसे आप्त पुरुष पर मिथ्या कलंक लगाये गये हैं। महर्षि दयानन्द ने इस विषय में ठीक ही लिखा है—

"जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?" (स॰ प्र॰ ११वाँ समु॰)

राधा-कृष्ण का प्रसंग भी मिथ्या है—

पौराणिक जगत् तथा उनके वाङ्मय में राधाकृष्ण का विशिष्ट स्थान है। राधा को श्रीकृष्ण की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया गया है। पौराणिक जगत् में राधा के बिना कृष्ण की कल्पना ही असम्भव है। श्रीकृष्णचरित के मुख्य उपसेव्य 'महाभारत' में तो क्या विष्णु तथा भागवत पुराणों में भी राधा का उल्लेख नहीं है। केवल अत्यन्त परवर्ती ब्रह्मवैवर्त्त-

पुराण में राधा का उल्लेख मिलता है। राधा न तो श्रीकृष्ण की पत्नी है और न ही प्रेयसी। श्रीकृष्ण का विवाह तो विदर्भराज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी के साथ ही हुआ था। अतः रुक्मिणी ही एक विवाहित पत्नी थी।

कंस का वध और संघ की पुनः स्थापना

श्रीकृष्ण के भावी जीवन का प्रारम्भ कंस-वध से ही होता है। किन्तु कंस का वध करना सरल कार्य नहीं था। एक तो कंस मथुरा का स्वेच्छाचारी राजा था, दूसरे उसके ऊपर मगध-नरेश महाबलशाली जरासन्ध का वरदहस्त था। कंस जरासन्ध का जामाता था, उसकी अस्ति और प्राप्ति कन्याओं से कंस का विवाह हुआ था। दूसरी तरफ यादवों में परस्पर एकता का अभाव था। कंस का दादा आहुक और वृष्णी वंश में बड़े अक्रूर, ये दोनों अपने-अपने भिन्न-भिन्न दल बनाए हुए थे। कंस अपने गुप्तचरों से श्रीकृष्ण के बल पराक्रम के समाचारों से भली भांति परिचित रहता था। उसे स्वप्न में भी श्रीकृष्ण ही दिखाई देता था, इसलिये श्रीकृष्ण को मरवाने के लिये वह हर सम्भव उपाय करने को उद्यत था। यादव-वीरों पर वह विशेषदृष्टि रखता था और उनपर अत्याचारी ही नहीं, यथाशक्ति उन्हें कुचलने का प्रयास करता था।

जब कंस अपने भेजे नृशंस लोगों के द्वारा अथवा मायावी राक्षसों के द्वारा श्रीकृष्ण का वध नहीं करा सका, तो उसने मन्त्रियों से सलाह करके एक षड्यन्त्र रचा। देवर्षि नारद से कंस को यह भी पता लग गया था कि श्रीकृष्ण वसुदेव के ही पुत्र हैं। इधर कंस ने श्रीकृष्ण को मरवाने के लिये चाणूर, मुष्टिक जैसे पहलवानों को अपनी रक्षा के लिये रख छोड़ा था तो उधर श्रीकृष्ण और बलराम ने भी यह निर्णय कर लिया था कि जब तक कंस को नहीं मारा जाता, तब तक यादवों का संघराज्य स्थापित नहीं हो सकता। दोनों ओर से पूरी तैयारी हो रही थी। कंस ने अपने पहलवानों को विशेष निर्देश दे रखे थे कि वे किसी भी प्रकार से (छल या बल से) इन दोनों यादववीरों को समाप्त कर दे, जैसा कि एक श्लोक में वर्णन मिलता है—

> गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्भ्यां तौ ममाग्रतः।
> मल्लयुद्धे निहन्तव्यौ मम प्राणहरौ हि तौ॥ (विष्णु० ५।२)

अपनी कुटिल नीति के अनुसार कंस ने एक धनुष-यज्ञ का आयोजन मथुरा में किया, जिसमें दूर-दूर से पहलवानों को बुलाया गया। यादव

अक्रूर को भेजकर कृष्ण और बलराम को भी मथुरा बुलाया गया। दोनों यादववीर अक्रूर के साथ मथुरा में बड़ी खुशी से आ गये। भागवतकार ने यहां कुब्जा-प्रसंग भी जोड़ दिया है, किन्तु वह अतिरंजित होने से यथार्थ और प्रसंगानुकूल नहीं लगता। कृष्ण और बलराम धनुष-यज्ञशाला में पहुँच जाते हैं, जहां बड़े-बड़े पहलवान पहले से ही उपस्थित थे। कंस एक ऊँचे सिंहासन पर बैठकर सब कुछ देख रहा था। भागवत के अनुसार धनुष यज्ञशाला में पहुँचने से पूर्व ही एक खूनी कुवलयापीड नामक हाथी कंस ने छोड़ रखा था, जो अवसर मिलने पर दोनों यादव वीरों को समाप्त कर दे। और अपने पहलवानों की शक्ति पर कंस को बड़ा अभिमान था। परन्तु तेजस्वी और उत्साही व्यक्तियों के सामने कौन सा कार्य असम्भव होता है! कहा भी है—

तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ।।

श्रीकृष्ण व बलराम दोनों ही मल्लविद्या में पूर्ण पंडित हो गये थे, उन्हें भी अपने बल पर पूरा भरोसा था। पहले मार्ग के कण्टक कुवलयापीड हाथी को परास्त किया और बाद में धनुष को तोड़कर अपनी वीरता का परिचय कराया। तत्पश्चात् कंस के नामी पहलवानों से दोनों वीर बालकों ने हाथ मिलाया। उस समय अपने संकल्प में सफलता देखकर कंस मन ही मन बहुत प्रसन्न हो रहा था, किन्तु उसे इन वीर-बालकों के बल का पूर्ण-परिचय नहीं हो पाया था। श्रीकृष्ण ने चाणूर को और बलराम ने मुष्टिक पहलवान को एक दो दांवों में ही पछाड़ दिया और खेल-खेल में ही चाणूर और मुष्टिक को मारकर विजयश्री की दुन्दुभी बजा दी। चारों तरफ बैठे दूर-दूर से आये पहलवान तथा दर्शक दोनों बालकों के इस अद्भुत कर्म की प्रशंसा करके करतलध्वनि करने लगे। यह देखकर कंस को अतीव पीड़ा हुई और उससे रहा न गया। कंस स्वयं जोश में आकर अखाड़े में आ धमका। श्रीकृष्ण तो यह चाह ही रहे थे, उन्होंने तुरन्त कंस को पकड़कर भूमि पर दे मारा और उसकी छाती पर बैठकर मुष्टि प्रहार करने लगे। यह देखकर कंस का भाई सुनामा दौड़कर कंस की सहायता के लिये आया, उसे बलराम ने पहले ही दबोच लिया। दोनों वीर बालकों ने यादवों पर चिरकाल से अत्याचार करने वाले कंस और सुनाम को यम-लोक का पथिक बना दिया।

श्रीकृष्ण इस दंगल के विजेता ही नहीं, प्रत्युत जनता पर किये जुल्मों व अत्याचारों को समाप्त करने वाले भी थे। उन्होंने कंस का

मुकुट उतरवाकर तुरन्त ही कारागार से कंस के पिता उग्रसेन तथा अपने माता-पिता को छुड़वाकर उग्रसेन को अपना राजा बनाया। महाभारत के सभापर्व में पूर्वोक्त वर्णन (सभा० अ० १३।३०-३४ में) इस प्रकार मिलता है—"श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के वध से पूर्व युधिष्ठिर के सम्मुख अपनी यह कथा इस प्रकार सुनाई थी—कुछ काल पश्चात् कंस ने यादवों को सताया और जरासन्ध की कन्याओं से अपना विवाह किया। जरासन्ध से सम्बन्ध स्थापित होने पर तो कंस ने बालाभिमान के कारण अपनी जाति वालों को तथा भोजवंशी वृद्ध राजाओं को खूब सताया। तब मैंने और भाई बलराम ने मिलकर कंस को मारा और अपने संघ का पुनरुद्धार किया।"

श्रीकृष्ण के जीवन की यह बहुत बड़ी प्रथम विजय थी और अधर्म-राज्य का नाश करके धर्म-राज्य स्थापना का भी यह पहला कदम था। श्रीकृष्ण चाहते तो स्वयं भी राजा बन सकते थे, किन्तु प्रजा के हित में प्रजा की इच्छा तथा संघ के नियमों के अनुकूल ही करना अच्छा समझा। यद्यपि कंस के अत्याचारों से प्रजा अत्यन्त पीड़ित थी, किन्तु अत्याचार का सामना करने से सभी घबराते थे। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन के उद्देश्यानुसार ही (अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना करना) यह सब किया, अतः वे अपनी इस धर्मप्रियता के लिये प्रजा में अत्यधिक प्रशंसित हुए।

श्रीकृष्ण की शिक्षा-दीक्षा

कंस को मारकर संघ-राज्य की पुनः स्थापना के पश्चात् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई अवन्तिकापुरी, जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं, उसके निकट परमतपस्वी सान्दीपनि मुनि के गुरुकुल में पढ़ने के लिये गये। यह गुरुकुल शिक्षा की दृष्टि से उस समय बहुत प्रसिद्ध था, यहां दूर-दूर से विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते थे। प्राचीन गुरुकुलों की व्यवस्था भी बहुत अच्छी होती थी। गुरुकुलों में गरीब व अमीर का कोई भेद नहीं होता था। पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों का सादा रहन-सहन, खाने-पीने में किसी प्रकार के भेद-भाव का न रखना, तपस्या का जीवन, प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक नियमित दिनचर्या का पालन करना, सभी विद्यार्थियों की समान वेशभूषा, ब्रह्मचर्य के कठोर व्रतों का पालन करना, मेखला, दण्ड धारण, मृगछाल आदि धारण करना, प्रातः सायं सन्ध्या-हवन करना, जूता-छत्रधारण न करना, शृंगार के सभी सामानों का त्याग रखना, भूमि पर शयन करना, इत्यादि गुरुकुल के नियमों का पालन सभी को समानता से करना पड़ता था। श्रीकृष्ण और बलराम ने भी यज्ञोपवीत संस्कार

पुरोहित गर्गाचार्य से कराकर गुरुकुल-पद्धति से ही अध्ययन किया। पठन काल में श्रीकृष्ण का व्यवहार बहुत ही विनम्र होने से सभी गुरुकुलवासी इनसे प्रसन्न रहते थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा के विषय में भागवतकार लिखता है—

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ॥
(भाग० १० स्कन्ध)

प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः।
सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा॥
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधम्॥
(भाग० १०।४५।३३-३४)

अर्थात् श्रीकृष्ण और बलराम ने यदुकुल के पुरोहित गर्गाचार्य से यज्ञोपवीत संस्कार कराकर द्विजत्व प्राप्त किया और गायत्री मन्त्र की दीक्षा ली। तत्पश्चात् गुरुकुल में जाकर छः अंगों सहित चारों वेद, उपनिषद्, धनुर्वेद, चारों उपवेद, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, मीमांसा और छः भेदों सहित राजनीति शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। महाभारत में यद्यपि शिक्षा का प्रसंग नहीं मिलता, पुनरपि राजसूययज्ञ के अवसर पर अग्रपूजा के लिये श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तुत करते हुए भीष्मपितामह कहते हैं—

वेद-वेदाङ्ग-विज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥
(सभा० ३८।१९)

अर्थात् श्रीकृष्ण ज्ञान-विज्ञान तथा शस्त्रास्त्र विद्या में इतने निपुण हैं कि उनसे अधिक इस समय सम्पूर्ण पृथिवी पर दूसरा कोई नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि गुरुकुल में रहकर श्रीकृष्ण ने क्या-क्या विद्यायें पढ़ी थीं! परन्तु यहां भी पुराणकार चमत्कार दिखाये बिना नहीं रह सका और कल्पना को उठान में यह लिख दिया कि श्रीकृष्ण ने ६४ विद्यायें ६४ दिनों में ही पढ़ ली थीं। और विद्या समाप्ति के बाद जब गुरुदक्षिणा की बात आई तो श्रीकृष्ण ने गुरुजी को धनधान्य से तो सन्तुष्ट किया ही, साथ ही गुरु के मृतपुत्र को यमराज की नगरी से लाकर दिया। किन्तु ये बातें असम्भव और सृष्टिक्रम विरुद्ध होने से मान्य नहीं हो सकती। हाँ यह तो सम्भव है कि गुरुपुत्र का किसी ने अपहरण कर लिया हो और श्रीकृष्ण

ने पता लगाकर और उन्हें दण्डित करके मृत्यु के मुख से गुरुपुत्र की रक्षा करके गुरुजी को प्रसन्न किया हो। और इसी घटना को पुराणकार ने चमत्कारिक रूप से लिख दिया हो किन्तु मृत्यु के बाद पुत्र का जीवित होकर आना कदापि सम्भव ही नहीं है।

जरासन्ध के आक्रमण और श्रीकृष्ण का द्वारिका प्रस्थान —

जरासन्ध मगध (बिहार) का राजा था। उसने बलपूर्वक अनेक राज्यों को अपने अधीन कर ८६ राजाओं को कारागार में डाल दिया था। अनेक राजाओं ने जरासन्ध की अधीनता कर देकर स्वीकार कर ली थी। अनेक मायावी बलवान् राजाओं ने उसका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। युधिष्ठिर का मामा पुरुजित जरासन्ध का पक्षपाती था। अनेक राजवंशों ने जरासन्ध के भय से भागकर उत्तर भारत छोड़कर अन्यत्र शरण ले ली थी। यादव-संघ का राज्य भी अपनी दो कन्याओं (अस्ति और प्राप्ति) का विवाह कंस के साथ करके अपने अधीन ही कर लिया था। यादवकुल को पारस्परिक फूट ने भी अत्यधिक खोखला बना रखा था।

परन्तु श्रीकृष्ण के द्वारा कंस की मृत्यु का समाचार जब जरासन्ध को पता लगा और उसकी दोनों पुत्रियां रोती-पीटती घर पर आयीं तो उनका वैधव्यतावश करुण क्रन्दन जरासन्ध से नहीं देखा गया और एक बहुत बड़ी सेना को लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि उसे अपनी सेना पर अत्यधिक अभिमान था, किन्तु श्रीकृष्ण की युद्धनीति और और अप्रतिहत तेज के कारण जरासन्ध को पराजित होकर भागना पड़ा। इस प्रकार जरासन्घ ने मथुरा पर बहुत बड़ी सेना के साथ सतरह बार आक्रमण किये किन्तु सफलता नहीं मिली। परन्तु (संग्रामे अष्टादशावरे० सभा० १४।४०) महाभारत के अनुसार जब अठारहवीं बार आक्रमण किया तो मथुरावासी एक नई विपत्ति से घिर गये थे। म्लेच्छ कालयवन नामक शक्तिशाली राजा ने मथुरा को चारों तरफ से घेर लिया था। ऐसी स्थिति में १८ हजार यादव सेना जरासन्ध और कालवयन की कई लाख सेना का प्रतिरोध कैसे और कब तक कर सकती थी। सभापर्व १४।३६ के अनुसार —

न हन्यामो वयं तस्य त्रिभिर्वर्षशतैर्बलम् ॥

अर्थात् श्रीकृष्ण ने यादवों से मन्त्रणा करते हुए कहा कि अब ऐसी स्थिति है कि हम तीन सौ वर्षों तक भी जरासन्ध की सेना को पराजित नहीं कर सकेंगे। इसलिये युद्ध नीति के अनुसार अपने तथा शत्रु के बलाबल को देखते हुए मथुरा को छोड़कर पश्चिम की ओर चल पड़े और कुछ

दिन प्रवर्षण-पर्वत पर रहकर पश्चिमी समुद्र के तट पर द्वारिका नगरी में दृढ़ दुर्ग बनाकर रहने लगे। श्रीकृष्ण का मथुरा से पलायन कूटनीतिज्ञ जरासन्ध की शक्ति को देखते हुए युद्धनीति के अनुकूल ही था। द्वारिका-नगरी, जिसके एक तरफ समुद्र और दूसरी ओर रेवतक पहाड़ था, शस्य-श्यामला भूमि थी। श्रीकृष्ण ने इस नगरी में इतना दृढ़ दुर्ग बनवाया जिसको जीतना सरल नहीं था। उसमें बैठकर थोड़े भी सैनिक शत्रु सेना के दाँत खट्टे कर सकते थे। श्रीकृष्ण की इस नीति का अनुमोदन महर्षि दयानन्द ने भी किया है—"कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिप जाना उचित है। जैसे सिंह क्रोध से सामने आकर ····· ······भस्म हो जाता है, वैसे मूर्खता से नष्ट-भ्रष्ट न हो जावे।"

(स० प्र० ६ समु०)

इस मथुरा से पलायन और द्वारिका प्रस्थान की घटना का उल्लेख महाभारत के सभापर्व ४६वें अध्याय में किया गया है।

श्रीकृष्ण का विवाह—

द्वारिकापुरी में आकर बलराम का विवाह रैवतक राजा की पुत्री रेवती से हुआ। और विदर्भदेश के राजा भीष्मक ने अपनी पुत्री रुक्मिणी के स्वयंवर का आयोजन किया। भीष्मक एक शक्तिशाली राजा थे किन्तु उन्होंने जरासन्ध की अधीनता स्वीकार कर रखी थी। भीष्मक तथा उनका पुत्र रुक्मी रुक्मिणी का विवाह जरासन्ध के सेनापति तथा श्रीकृष्ण की फूफी के लड़के और चेदिराट् दमघोष के पुत्र शिशुपाल से करना चाहते थे किन्तु रुक्मिणी श्रीकृष्ण से विवाह करना चाहती थी। स्वयंवर में विभिन्न देशों के युवराजों को निमन्त्रित किया गया था किन्तु श्रीकृष्ण को नहीं बुलाया गया। रुक्मिणी ने अपना विवाह अपनी इच्छा के विरुद्ध होता देख कर एक वृद्ध ब्राह्मण के हाथ द्वारिकापुरी सन्देश भिजवाया कि मेरे माता-पिता मेरा विवाह शिशुपाल से करना चाहते हैं, मैं उसे बिल्कुल भी नहीं चाहती। मैं तो मन से आपको वर चुकी हूं। इसलिये सन्देश पाकर ही तुरन्त नगर से बाहर उद्यान में अवश्य आ जायें, मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगी।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी का सन्देश पाकर रथारूढ़ होकर विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर की ओर चल पड़े। इधर शिशुपाल को भी यह समाचार मिल गया था। वह भी रुक्मिणी-हरण के काण्ड को रोकने के लिये अपने मित्र राजाओं व सेना सहित कुण्डिनपुर पहुंच गया। नियत समय पर

रुक्मिणी नगर से बाहर उद्यान में भ्रमण के बहाने आ गई और श्रीकृष्ण उसे रथ में बैठाकर द्वारिका को चल दिये। शिशुपाल ने पीछे से श्रीकृष्ण पर हमला भी किया, किन्तु बलराम ने यादवदल के साथ शिशुपाल और उसकी सेना को बुरी तरह मार भगाया। द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिवत् विवाह करके अपनी पत्नी बनाया। क्योंकि यह विवाह कन्या की इच्छानुसार था, अतः अपहरण करते हुए भी राक्षस-विवाह के अन्तर्गत नहीं आता। क्योंकि राक्षस-विवाह में कन्या के विरुद्ध अपहरण किया जाता है। श्रीकृष्ण के रुक्मिणी के साथ विवाह की घटना का संकेत सभापर्व (४५।१५) में मिलता है। महाभारत में किसी भी स्थल पर श्रीकृष्ण के किसी दूसरे विवाह का संकेत नहीं मिलता, पुनरपि पौराणिकों ने मनमाने दोषों में भी श्रीकृष्ण पर बहुपत्नी होने का दोष लगाया है। यह एक दुर्भाग्य की ही बात है कि श्रीकृष्ण जैसे योगेश्वर आप्तपुरुष को भी बहुत पत्नियों वाला बनाकर दोषारोपण किया गया है।

श्रीकृष्ण की सन्तान—

उपर्युक्त श्रीकृष्ण की घटना से स्पष्ट होता है कि कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह एक हार्दिक प्रेम तथा गुण, कर्म, स्वभावानुसार था। अतः दोनों के संयोग से सन्तान भी उत्तम ही होनी थी। उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिये माता-पिता को उत्तम-विवाह के साथ अन्य भी प्रयास करने पड़ते हैं। महाभारत में श्रीकृष्ण ने उन प्रयासों का एक स्थान पर स्वयं ही कथन[1] किया है कि मैंने सपत्नीक हिमालय पर्वत पर जाकर बारह वर्ष तक (विवाह के बाद) घोर ब्रह्मचर्यव्रत का अनुष्ठान किया था। उसी तपस्या के अनुरूप सनत्कुमार के समान तेजस्वी प्रद्युम्न नामक पुत्र पैदा हुआ पिता और पुत्र में इतनी रूप, शीलादि में समानता थी कि अनेक बार तो पहचानने में लोगों को भ्रम ही हो जाता था। हमारे आदर्शपुरुष योगेश्वर कृष्ण कितने तपस्वी थे, कितने संयमी थे और कितने सदाचारी थे ? यह इस घटना से बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाता है। ऐसे आप्तपुरुष को भी प्रमादी पौराणिकों ने वासना की दलदल में फंसाकर श्रीकृष्ण की १६ हजार रानियाँ मान लीं, यह कितने आश्चर्य की बात है ?

---

१. ब्रह्मचर्यं महद्घोरं चीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत् पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमार-तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥ (सौप्तिकपर्व अ० १२)

श्रीकृष्ण का पाण्डवों से मिलन और द्रौपदी का स्वयंवर

महाभारत में श्रीकृष्ण का पाण्डवों का मिलन सर्वप्रथम द्रौपदा स्वयंवर के अवसर पर होता है। पांचाल राज द्रुपद ने, अपनी पुत्री द्रौपदी, जिसका यज्ञ सेनी भी एक दूसरा नाम था, उसके स्वयंवर के अवसर पर देश-विदेश के राजाओं को निमन्त्रित किया हुआ था। श्रीकृष्ण भी इस अवसर पर पांचाल पहुंचे। राजा द्रुपद ने एक बड़ी कमान (धनुष) बनवा रखी थी, जिस पर प्रत्यञ्चा (चिल्ला) चढ़ाना अतीव दुष्कर कार्य था और आकाश में एक यन्त्र लगा दिया था। स्वयंवर की यह शर्त[1] थी कि जो कमान पर चिल्ला चढ़ाकर तीर से लक्ष्य को वेध देगा, वही द्रौपदी से विवाह कर सकेगा।

इधर ब्राह्मणवेष में पांचों पांण्डव स्वयंवर में पहुंचे हैं। पाण्डवों की प्रसंग प्राप्त पूर्व कथा इस प्रकार है—श्रीकृष्ण की एक फूफी थी पृथा। इसे बचपन में ही दादा शूर ने अपने मित्र कुन्ति भोज (मालवे का राजा, जिसके अपनी कोई सन्तान न थी) को दे दी थी। इस प्रकार पृथा भोज-राज कुन्ति की गोद ली कन्या थी। भोजराज ने पृथा का स्वयंवर रचा, जिसमें बलवान् पाण्डु ने जीतकर पृथा से विवाह किया। पाण्डु के भाई धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने मामा शकुनि के परामर्श से राज्य के लोभ में वारणावत में लाक्षागृह बनवाया और पाण्डवों को समाप्त करने का षड्यन्त्र किया। किन्तु विदुर की गुप्त नीति से सचेत होकर कुन्ती सहित पांचों पाण्डव लाक्षागृह से निकलकर जंगलों में छिपकर रहते रहे। द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुनकर पाण्डव भी ब्राह्मणवेष में ही स्वयंवर में पहुंचे थे।

स्वयंवर में आये हुए सभी राजकुमारों ने अपनी-अपनी शक्ति का परीक्षण किया, किन्तु सफलता तो बहुत दूर, घुटनों से ऊपर भी धनुष को नहीं उठा सके। वीर कर्ण ने धनुष को उठाया भी, किन्तु द्रौपदी ने सूत पुत्र कहकर विवाह करने से मना कर दिया। अन्त में ब्राह्मण वेष में अर्जुन ने धनुष उठाकर लक्ष्य साधा और तीर से लक्ष्य वेधकर द्रौपदी को जीता। द्रौपदी को ब्राह्मण कुमार ले जाये, यह सभी उपस्थित राजकुमारों

---

१. द्र० आदि पर्व १८७ श्लोक ११ में—
इदं सज्जं धनुः कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः।
अतीतलक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति ॥

को सहन न हो सका और शोर मचाकर लड़ने को तैयार हो गये। इधर युद्ध का वातावरण देखकर भीम ने वृक्ष को उखाड़कर गदा बना ली और और युद्ध करने को तैयार हो गया।

इससे पूर्व श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को कभी देखा नहीं था, केवल उनकी पूर्व लिखित घटना को दूर से ही सुना था। लाक्षागृह-दाह के बाद पाण्डवों व कुन्ती का क्या हुआ, यह कुछ भी श्रीकृष्ण नहीं जानते थे। परन्तु अर्जुन का लक्ष्य वेध और भीम का वृक्ष की गदा बनाना देखकर श्रीकृष्ण अच्छी प्रकार समझ[1] गये कि ये अर्जुन और भीम ही हैं। और श्रीकृष्ण ने बलराम भाई से उनके विषय में जानकारी दी। और पाण्डवों को जीवित देखकर अतिशय प्रसन्नता भी प्रकट की। इसके पश्चात् अर्जुन से कर्ण ने और भीम से शल्य ने धनुर्विद्या और मल्वविद्या में दो-दो हाथ भी किये और पाण्डवों की धाक मानकर निस्तेज हो गये। श्रीकृष्ण ने फिर सभी राजकुमारों को[2] समझाया कि भाई ! इसमें लड़ने की क्या बात है ? यहाँ धर्म पूर्वक ब्राह्मण ने स्वयंवर जीता है। अतः उससे द्वेष करना ठीक नहीं। श्रीकृष्ण ने यहाँ होने वाले रक्तपात को रोककर शान्त किया, और अपने-अपने घर वापिस भेज दिया। श्रीकृष्ण का उपस्थित सभी राजाओं के हृदय में बड़ा सम्मान था, इसीलिये वे श्रीकृष्ण की बात को स्वीकार कर तुरन्त शान्त हो गये। श्रीकृष्ण की अर्जुन के साथ मित्रता का प्रारम्भ यहीं से हुआ। एक वीर का दूसरे की वीरता को देखकर प्रभावित होना स्वाभाविक भी होता है।

स्वयंवर के पश्चात् द्रौपदी सहित पाण्डव अपने निवास स्थान पर चले गये और पीछे-पीछे श्रीकृष्ण और बलराम भी पाण्डवों के पास गये। वहाँ परस्पर खुलकर वार्तालाप हुआ और कुशलक्षेम पूछकर अपनाअपना पूर्ण परिचय भी दिया। श्रीकृष्ण ने हँसते हुए कहा—गूढोऽग्निर्ज्ञायत एव राजन्। (आदि० १९०) अर्थात् अग्नि छिपने पर सर्वथा अज्ञात नहीं रह सकती। उसका पता लग ही जाता है। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध कराकर द्रौपदी के विधिवत् विवाह संस्कार की विधि भी कराई। ऐसी दुर्दशा दशा में आपत्तिग्रस्त मित्रों की सहायता करना श्रीकृष्ण जैसे आदर्श मित्र का ही कार्य हो सकता है।

---

१. द्र० आदिपर्व का १९१ वाँ अध्याय और १८८वाँ अध्याय।

२. द्र० आदि० १९० अ०।

महाराज द्रुपद से सम्बन्ध स्थापित होने पर पाण्डवों की स्थिति दृढ़ हो गई और उन्हें अब छिपकर रहने की आवश्यकता नहीं रही। धीरे-धीरे यह सूचना भीष्म पितामह और धृतराष्ट्र को भी मिल गई। पाण्डवों को जीवित पाकर ये दोनों बहुत प्रसन्न हुए और उनसे मिलने के लिये उत्सुक हो गये। धृतराष्ट्र के आदेश से विदुर जी को पाण्डवों को लेने के लिये भेज दिया और उनके स्वागत की तैयारी होने लगी। यह देखकर शकुनि और दुर्योधन की आशाओं पर पानी फिर गया, किन्तु उस समय कुछ कर नहीं सके। बाद में राजपरिवार का क्लेश देखकर राज्य के दो भाग कर देने का निर्णय लिया गया। पाण्डवों को खण्डवप्रस्थ का इलाका दिया गया। पाण्डवों ने उस स्थान को ही घोर परिश्रम से सुन्दर बनाया और महर्षि व्यास जी के हाथों से नगर की स्थापना की गई। मय नामक शिल्पी की सहायता से नगर के प्राकार बनाकर सुदृढ़ दुर्ग बनाया और सुरक्षा हेतु सेना को तैयार किया गया। नगर में बावड़ियों, सरोवर, बाग-बगीचे, कृत्रिम पहाड़, सरस्वती मन्दिर, गगनचुम्बी भवन, व्यापार प्रतिष्ठान आदि सभी जनोपयोगी वस्तुओं व स्थानों का प्रबन्ध किया गया। इसी का प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान देहली) रखा गया। इस प्रकार युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ में राज्याभिषेक कराकर श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी वापिस चले गये।

सुभद्रा का विवाह प्रसंग—श्रीकृष्ण के राज्य (द्वारिकापुरी) के निकट एक प्रभास नामक स्थान है। जिस स्थान पर आजकल सोमनाथ का मन्दिर बना हुआ है। वहां पर एक बार अर्जुन देशाटन करते हुए पहुंच गये। श्रीकृष्ण को मित्र अर्जुन का पता लगने पर बहुत खुशी हुई और वे अर्जुन के स्वागत के लिये तुरन्त वहां पहुंचे। दोनों मित्र गले लगकर मिले। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुन को रैवतक पर्वत पर भ्रमणार्थ ले गये। उसके बाद रथारूढ़ होकर दोनों द्वारिकापुरी आ गये। अर्जुन की वीरता की गाथायें तो नगरवासियों ने पहले सुनी थी, किन्तु आज वीरता की साक्षात् मूर्ति अर्जुन को पाकर नगर निवासियों ने उसका अतिशय हार्दिक स्वागत किया। श्रीकृष्ण के मित्र नगर में आये हैं, इसलिये सारी नगरी को अत्यधिक दुल्हिन की भांति सजाया गया। स्वागत व सत्कार के बाद अर्जुन कुछ दिन वहीं रहे। इतने में यादव वंशियों ने किसी त्यौहार के कारण परम्परा के अनुसार रैवतक पर्वत को खूब सजाया। वहां यादव परिवारों का मेला ही लग गया। सुन्दर सजे हुए रथों पर बाजों के साथ

सात्वत-सरदारों की सवारियाँ निकल रहीं थीं। बलराम अपनी रेवती के साथ तथा दूसरे यादव वंशी भी रूपहनी भ्रमण करने आये हुए थे। श्रीकृष्ण भी अर्जुन के साथ इस मंगलोत्सव को देखने के लिये आये। श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा भी अपनी सखियों के साथ यहाँ आई थी। अर्जुन और सुभद्रा ने जब एक दूसरे को देखा तो वे अपने को संयत नहीं रख सके। श्रीकृष्ण उनके मनोभाव को समझ कर बोले—अर्जुन! क्या वनोत्सव¹ में भी काम के बाण चलते हैं? सुभद्रा सभी पारिवारिक जनों को अतिशय प्यारी है। श्रीकृष्ण बोले—यदि तुम्हारी इच्छा हो तो पिता जी से बातें करूँ? अर्जुन ने मौन होकर स्वीकृति दे दी। श्रीकृष्ण बोले—क्षत्रिय कन्याओं का या तो स्वयंवर होता है, अथवा अपहरण। अर्जुन ने इसी बीच दूत भेजकर बड़े भाई युधिष्ठिर की अनुमति ले ली। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ में स्वयं सुभद्रा को बैठा दिया। किन्तु यह बात श्रीकृष्ण के पारिवारिक जनों तथा वंशजों को अच्छी नहीं लगी और वे युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गये। युद्ध का भेरीनाद बजवा दिया गया। बलराम ने भी श्रीकृष्ण से अर्जुन के इस साहसिक कर्म की भरपूर निन्दा की। युद्ध जैसा वातावरण देखकर श्रीकृष्ण ने अपने वंशजों और पारिबारिक जनों को शान्त करते हुए कहा—वीरयादवों! मेरी समझ में सुभद्रा का अर्जुन के साथ सम्बन्ध होने से हमारे कुल की प्रतिष्ठा ही बढ़ी है। आर्य पुरुष अपनी कन्याओं का न तो विक्रय करते हैं और न दान करते हैं। राजकुमारियों का उपहार है वीरता। और यह उपहार अर्जुन ने देकर अपना अमिट प्रभाव सुभद्रा के मन पर डाला है। अर्जुन कोई छोटे कुल का भी नहीं है। ये भरत का वंशज, शान्तनु का प्रपौत्र और कुन्ति भोज का दैहित्र है। और बहिन सुभद्रा ने स्वयं उसे अपनी इच्छा से वरण किया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के समझाने से यादव वीर शान्त हो गये और अर्जुन को वहीं रोककर बड़ी धूमधाम से विवाह संस्कार कराया। अर्जुन कुछ दिन विवाह के बाद श्रीकृष्ण के पास ही ठहरे और फिर अपनी यात्रा पूरी करते हुए इन्द्रप्रस्थ वापिस आ गये।

श्री कृष्ण का जरासन्ध के वध में योगदान

महाराज युधिष्ठिर ने सभी भाईयों तथा सहयोगियों की सहायता से अरण्य प्राय खाण्डवप्रस्थ को जलाकर, मय नामक शिल्पी की सहायता से

---

१. द्र० आदि पर्व का २२१वाँ अध्याय।

जंगल में मंगल कर दिया था। उत्तरोत्तर राज्य की समृद्धि बढ़ रही थी। प्रजा हृदय से राजा को पितृवत मानकर उसका सम्मान करती थी। व्यापार का व्यवस्थित होना निरुपद्रव शासन का चलना, समय पर वर्षादि के होने से समृद्धि का होना, जन सामान्य का नीरोग होना, आदि अच्छे राज्य के ही प्रतीक थे। एक बार धर्मात्मा युधिष्ठिर के मन में धर्मशासन का विस्तार करने के लिए राजसूय-यज्ञ करने का विचार आया। मन्त्री-मण्डल ने भी सर्वसम्मति से उसका समर्थन किया। श्रीकृष्ण को भी इस विषय में परामर्श के लिए दूत भेजकर बुलावा लिया गया।

श्रीकृष्ण जहां धर्मरक्षार्थ सदा समृद्ध, धीर-वीर, नीतिनिपुणता तथा समस्त परिस्थिति को समझने वाले थे, वहां निस्संकोच होकर स्पष्ट वक्ता भी थे। उन्होंने राजसूय-यज्ञ करने से पूर्व युधिष्ठिर को यह सलाह दी कि इस समय आपके राजसूय-यज्ञ में सबसे अधिक बाधक है—मगध नरेश जरासन्ध। उसने अपने बल पराक्रम से ८६ राजाओं को अपनी कैद में रखा हुआ है। और सौ संख्या होने पर उन सभी को क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध मार देगा। क्षत्रिय तो अपनी शक्ति का प्रदर्शन रणक्षेत्र में अन्याय के विरुद्ध ही करता है, किन्तु जरासन्ध ने नृशंसता व क्रूरता ही दिखाई है। प्रथम उसका हम प्रतिरोध करें और वन्दी राजाओं को छुड़ा देवें।

सम्राट् बनने के इच्छुक युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण की बातें यथार्थ होते हुए भी अच्छी नहीं लगी। क्योंकि युधिष्ठिर सम्राट् बनने के लिये नर-संहार नहीं चाहते थे। श्रीकृष्ण ने नर-संहार से डरे हुए युधिष्ठिर को फिर से समझाया—हे युधिष्ठिर ! तू भरत वंशज, कुन्ती का पुत्र होकर ऐसी निराशाभरी बातें करता है, यह एक महान आश्चर्य है। यह सत्य है कि जरासन्ध की विशाल सेना को बिना नर-संहार के नहीं जीता जा सकता। किन्तु क्रूर व्यक्ति को दण्डित न करना भी तो कायरता है। हमें नीति से काम लेना चाहिए, जिससे साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। जरासन्ध को युद्ध क्षेत्र में जीतना सरल कार्य नहीं है। हम उसे चुपचाप महलों में जाकर द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारें तो जरासन्ध कदापि चुप नहीं बैठेगा और भीम-अर्जुन की सहायता से उसको मारा जा सकता है। आप मुझे इन दोनों वीरों को दे दीजिए। युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण का यह परामर्श अच्छा लगा और भीम-अर्जुन को ले जाने की अनुमति दे दी।

क्षत्रियोचित कार्य के लिए प्रसन्नता से उद्यत भीम और अर्जुन को साथ लेकर श्रीकृष्ण मगधप्रदेश की ओर चल पड़े। रास्ते में जरासन्ध के

क्रूरता पूर्ण कार्यों की चर्चा करके और क्षत्रिय धर्म की व्याख्या श्रीकृष्ण करते रहे। श्रीकृष्ण जरासन्ध को मारने का भी उपाय सोचते रहे। उन्हें मार्ग में यह ध्यान आया कि जरासन्ध ब्राह्मणों अथवा स्नातकों का बड़ा आदर करता है, चाहे वे आधी रात को ही क्यों न आ जायें। अपने इस व्रत के पालन करने में वह सदा उद्यत रहता है और इस व्रत पालन की सर्वत्र उसकी ख्याति है। अतः ब्राह्मणवेश में हो जरासन्ध के पास पहुंचा जाए। यह सोचकर मगध की राजधानी गिरिव्रज (राजगृह) की ओर चल पड़े। रास्ते में एक माली से पुष्प[1] मालायें छीनकर ले लीं और चारों तरफ फैली पर्वत चोटियों को ही तोड़कर राजग्रह में प्रवेश कर राजा के महल तक पहुँच गये। जरासन्ध ने महल में ब्राह्मण वेष में आये स्नातकों का खूब मधुपर्क आदि से सम्मान किया। भीम-अर्जुन के विषय में परिचय देते हुए श्रीकृष्ण बोले—ये दोनों आजकल मौनव्रत रखे हुए हैं और आधी रात को मौनव्रत खोलेंगे, इसलिए आधी रात को ही मिलने का समय निश्चित किया गया। यज्ञशाला के निकट इनके ठहरने की समुचित व्यवस्था करके जरासन्ध राजमहल में चला गया और आधीरात के समय मिलने के लिए फिर आया।

यद्यपि द्वारपालों से गिरिश्रृंग तोड़ने की बात जरासन्ध सुन चुका था और अर्जुन व भीम के हाथों में प्रत्यञ्चा या गदा चलाने से पड़े चिह्नों को देखकर उनका ब्राह्मण बेष संदिग्ध हो गया था। और श्रीकृष्ण के द्वारा पूर्ण परिचय स्पष्ट रूप में देने से तो एक सन्देह दूर ही हो गया कि ये ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय ही हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा युद्ध के आह्वान को एकांत में सुनकर अभिमानी जरासन्ध द्वन्द्वयुद्ध के लिए तैयार[2] हो गया। यद्यपि श्रीकृष्ण ने तीनों में से किसी एक से युद्ध करने की बात कही थी। किन्तु उसने अपना प्रतिद्वंद्वी भीम को ही बनाया। इन दोनों का द्वन्द्वयुद्ध १३-१४ दिन तक हुआ, ऐसा कहा जाता है। दोनों ही वीरों में कोई कम नहीं था। किन्तु कोई निर्णय होता न देखकर १४ वें दिन श्रीकृष्ण ने भीम को याद दिलाया कि तू तो वायु पुत्र है। वायु की तरह तीव्रता से वार कर। युद्ध में थका शत्रु बहुत कम मिलता है। श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने उत्साहित होकर जरासन्ध को फुर्ती से टाँगों से पकड़कर चीर दिया और जरासन्ध सदा-सदा के लिए चिरनिन्द्रा में सो गया। जरासन्ध के मरते ही

---

१. द्र. सभापर्व के १०, १३, १४, १५ अध्याय

२. द्र० सभापर्व के २१, २२, २३ अ०।

श्रीकृष्ण ने सब से पूर्व कैदी राजाओं को छुड़ाया। उनके प्रत्येक के मुख से श्रीकृष्ण के प्रति धन्यवाद का शब्द ही निकल रहा था। श्रीकृष्ण ने उन सभी राजाओं को युधिष्ठिर के साम्राज्य में मिलने की सलाह देकर जाने का आदेश दिया और बिना नर-संहार के एक दुर्दान्त शत्रु को समाप्त कर उसी के पुत्र सहदेव को राजसिंहासन पर बैठाकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का मार्ग निष्कण्टक कर दिया।

यहां पर यह शंका हो सकती है कि क्या श्रीकृष्ण ने व्यक्तिगत द्वेष का बदला लेने के लिए युधिष्ठिर को यह परामर्श दिया था? किन्तु ऐसा सोचना नितान्त गलत है। श्रीकृष्ण तो द्वारिकापुरी में शान्ति से रहने लगे थे। यदि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ की बात नहीं करते तो श्रीकृष्ण ऐसी सलाह कैसे देते? और ८६ राजाओं को कैद में रखना और उन्हें क्षत्रिय विरुद्ध कैद करके मारने की धमकी देना सर्वथा ही अधर्मयुक्त कार्य तथा अन्याय था। और द्वन्द्वयुद्ध से पूर्व भी श्रीकृष्ण ने राजाओं को कैद से छोड़ दो अथवा द्वन्द्वयुद्ध करो, यह विकल्प ही जरासन्ध के समक्ष रखा था। यदि वह राजाओं को छोड़ देता तो उसके प्राण बच भी सकते थे। और इस बात से स्पष्ट होता है कि जरासन्ध के मरवाने में श्रीकृष्ण का व्यक्तिगत विद्वेष कारण बिल्कुल भी नहीं था। प्रत्युत अन्याय का प्रतिकार और धर्मरक्षा करना ही उद्देश्य था।

राजसूय-यज्ञ में श्रीकृष्ण का सर्वोपरि सम्मान

जरासन्ध की मृत्यु के पश्चात् राजसूय-यज्ञ का मार्ग प्रशस्त हो गया और उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। यज्ञ की सुव्यवस्था के लिए कार्यों का वितरण किया गया। जैसे दुःशासन को भोजन व्यवस्था तथा राजाओं का सत्कार, कृपाचार्य को स्वर्णरत्नों की रक्षा तथा यज्ञ की दक्षिणा देना, विदुर को व्यय का भार; तथा पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य को देखभाल का कार्य सौंपा गया। परन्तु श्रीकृष्ण ने यज्ञ में आने वाले ब्राह्मणों के पैर धोने का कार्य सहर्ष स्वीकार किया, यह उनकी महत्ता शालीनता, विनम्रता एवं सहृदयता का ही सूचक कार्य था। चारों दिशाओं में दिग्विजयार्थ चारों पाण्डवों को भेजा गया अर्थात अर्जुन को उत्तर में, भीम को पूर्व में, सहदेव को दक्षिण में और नकुल को पश्चिम में भेजा गया। इस स्थल पर महाभारत में जिन प्रदेशों का वर्णन मिलता है, उससे स्पष्ट है कि भारत देश कितना विशाल था। उत्तर में अफगानिस्तान से लेकर तिब्बत, आसाम तक, दक्षिण में लंका तक सभी राष्ट्र भारत राज्य

के अन्तर्गत ही थे। देश के विभिन्न राज्य अपनी आन्तरिक नीति में स्वतंत्र थे किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय नीति में परवश भी थे। राजसूय यज्ञ का समारोह देखन योग्य था। युधिष्ठिर की दीक्षा के पश्चात् अर्घ देने का जब समय आया तो भीष्म ने कहा—आचार्य, ऋत्विज्, स्नातक और राजा को अर्घ दिया जाता है। प्रथम यह निश्चय किया जाए कि अर्घ किसे देना है! युधिष्ठिर ने कहा कि इस अग्रपूजा के योग्य वही व्यक्ति हो सकता है कि जो सर्वगुण सम्पन्न अर्थात् इस समय ज्ञानादि की दृष्टि से सर्वाधिक हो भीष्म ने कुछ देर विचार कर[1] कहा–मैं सभी राजाओं मे श्रीकृष्ण को पूज्यतम समझता हूं। क्योंकि इस संसार में इस समय वेद विज्ञान तथा शस्त्रास्त्रादि चलाने की शक्ति में श्रीकृष्ण से अधिक कोई नहीं है। मैं यहां किसी दूसरे राजा को नहीं देख रहा हूं, जिसको श्रीकृष्ण ने अपने तेज से नहीं जीता है। श्रीकृष्ण ने जन्म से लेकर अब तक के जो-जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं उनसे हम सभी उनके अप्रतिम यश और शौर्य पर मुग्ध हैं। भीष्म के कहने के वाद सहदेव ने श्रीकृष्ण को अर्घ प्रदान किया।

इस अग्रपूजा के अवसर पर श्रीकृष्ण का नाम सुनकर चेदिराज शिशुपाल लाल-पीला हो गया, क्योंकि वह तो रुक्मणि-हरण की घटना से ही श्रीकृष्ण के प्रति कुपित था। उसने कहा कि श्रीकृष्ण अर्घदान के पात्र ही नही है। श्रीकृष्ण आचार्य, ऋत्विज्, स्नातक तथा राजा इनमें से कोई भी नहीं है। उसने श्रीकृष्ण पर बाल्यकाल से लेकर अब तक सभी स्त्रीघाती, गोघाती, साधारण ग्वाला, पेटू कुत्ता, नपुंसक, कृतघ्न, छली आदि कहकर दोष लगाये। और भीष्म को भी झूठी प्रशंसा करने वाला भाट बताया। शिशुपाल को इस प्रकार बड़बड़ाता देखकर भीम से नहीं रहा गया, किन्तु भीष्म ने उसे रोक दिया तत्पश्चात् श्रीकृष्ण को युद्धार्थ ललकारा और राजाओं को भड़काने लगा। श्रीकृष्ण गालियाँ तो चुपचाप सुनते रहे किन्तु क्षत्रिय होकर युद्ध के आह्वान को कैसे सहन कर सकते थे। वे खड़े हो गये और सभी राजाओं को सम्बोधित करके बोले—शिशुपाल ने अब तक सैकड़ों पाप किये हैं। किन्तु अपनी फूफी के कहने पर मैं इसे क्षमा करता रहा हूं। क्षमा की भी एक सीमा होती है। हमारे पीछे इसने द्वारिकापुरी[2] को जलाया, अपनी मामी को उड़ा ले गया, इत्यादि इसके पापों को क्षमा करता रहा हू। श्रीकृष्ण की बात सुनकर कुछ तो राजा पहले ही

---

१. द्र० सभा० ३६/२७, सभा० ३७/१६।

२. सभापर्व ४५ अ०।

शिशुपाल के कर्मों से नाराज थे, अब तो उन्हें पूर्णतः ही इससे घृणा हो चुकी थी। और दूसरे भी इनके कटुशब्दों को सुनकर कुपित हो गये थे। सब के सम्मुख शिशुपाल के पापों को याद दिलाकर श्रीकृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र चलाकर शिशुपाल की गर्दन को देखते देखते ही उड़ा दिया और उसके स्थान पर वहीं उसके पुत्र को राजा बना दिया गया।

तत्पश्चात् राजसूय यज्ञ का समापन हो गया। सभी राष्ट्रों के राजाओं ने महाराज युधिष्ठिर को तरह-तरह के उपहार भेंट में दिये। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को सम्राट् बनाने की बधाई देकर द्वारिका पुरी वापिस आ गये। इसके बाद सभापर्व में श्रीकृष्ण का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

श्रीकृष्ण का शाल्व के साथ युद्ध—जहाँ आजकल अलवर है, वहाँ महाभारत के समय शाल्वपुर नामक नगर था। इसके चारों तरफ मार्त्तिकावर्त नामक प्रदेश था और शाल्वपुर उसकी राजधानी थी। इस प्रदेश का राजा शाल्व था। उसने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब शिशुपाल का वध सुना, तो बहुत क्रोध से लाल-पीला हो गया। यह शाल्व राजा शिशुपाल का मित्र था और वह रुक्मिणी के स्वयंवर से ही कुपित था। किंवदन्ती यह भी है कि इसने स्वयंवर में ही यादवों के विनाश की प्रतिज्ञा की थी। श्रीकृष्ण अभी इन्द्रप्रस्थ में ही थे, पीछे से शाल्व ने द्वारिकापुरी पर आक्रमण कर दिया। द्वारिका को युद्ध की दृष्टि से सुदृढ़ दुर्ग के रूप में बनाया गया था। उसके चारों ओर चार द्वार थे। द्वारों पर योद्धाओं की चौकियाँ थीं। शत्रु के हमले की जानकारी देने वाले यन्त्र लगा रखे थे। लड़ाई का सामान स्थान-स्थान पर रखा हुआ था। सब ओर बुर्ज थे, बीच का बुर्ज सर्वोच्च था। इन बुर्जों पर पहरेदार तैनात किए हुए थे। शत्रु के हमले की चेतावनी सबको दे दी गई थी और युद्ध की भेरी बजा दी गई थी। सारे राष्ट्र में सुरापान का निषेध कर दिया गया था। शाल्व के पास एक ऐसा विमान था, जिसमें जीवन की सब सुविधायें थीं और उसमें बैठकर युद्ध भी किया जा सकता था। शाल्व के सेनापति क्षेमवृद्धि ने यादवों पर आक्रमण कर दिया और वह सांब यादव से लड़कर युद्ध से भाग गया। उसके बाद वेगवान् सेनापति आगे बढ़ा, वह युद्ध में मारा गया। उसके बाद दूसरे योद्धा आये तो श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने बाण वर्षा करके भूमि पर लिटा दिये, अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होता देख कर शाल्व स्वयं आगे बढ़ा, जिसका मुकाबला प्रद्युम्न ने किया। प्रद्युम्न

---

१. द्र० वनपर्व १५वाँ प्र०। मौसल पर्व का प्रथम अध्याय।

ने शाल्व के मायावी अस्त्रों को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। लड़ते-लड़ते दोनों योद्धा मूर्छित हो गये। प्रद्युम्न का सारथी दारुकि रण क्षेत्र से रथ को अलग ले गया। प्रद्युम्न ने सचेत होकर सारथी को धमकाया कि तूने यह क्या किया, यह तो भीरुओं का कार्य है। प्रद्युम्न फिर युद्ध में जा डटा, इस बार युद्ध बहुत ही भयंकर हुआ। शाल्व को बहुत चोटें आयीं और वह रण क्षेत्र छोड़कर भाग गया।

इन्द्रप्रस्थ से जब श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी पहुँचे, उससे पूर्व ही यह सब हो चुका था। श्रीकृष्ण ने यादव सेना के साथ शाल्व के राज्य पर हमला कर दिया। शाल्व सौभ-विमान से श्रीकृष्ण से लड़ने के लिये आ धमका। दोनों ओर से युद्ध बहुत भयंकर हुआ। श्रीकृष्ण ने आग्नेय शस्त्राशस्त्रों से सौभ-विमान को तोड़कर शाल्व को भी मार दिया। इस प्रकार शाल्व की द्वारिका-विजय की कामना सदा-सदा के लिये समाप्त हो गई।

पाण्डवों के प्रवास का कारण तथा अन्य घटनायें

जब श्रीकृष्ण राजा शाल्व के साथ लड़ाई में लगे हुए थे, उन्हीं दिनों इन्द्रप्रस्थ में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें हो गईं। राजसूय-यज्ञ की सफलता तथा इन्द्रप्रस्थ के समृद्ध वैभव दुर्योधन को सहन न हुए और उसने शकुनि के सहयोग से पाण्डवों को राज्य-भ्रष्ट कर दुःखी करने का कूट षड्यन्त्र रच दिया। द्यूत क्रीडा में अत्यन्त दक्ष शकुनि ने सरल प्रकृति धर्मराज युधिष्ठिर को जुए में प्रवृत्त कराकर अपने आप को, द्रौपदी तथा राज्य को भी दांव पर लगवा दिया। जिस दुर्योधन ने बाल्यकाल में भीम को बन्धवा[1] कर जल में फिंकवा दिया था, जिसने लाक्षागृह की रचना करवा कर पाण्डवों को सदा के लिये समाप्त करने का ही षड्यन्त्र किया था, वह इन्द्रप्रस्थ के राजमहलों में पाण्डवों को कैसे शान्ति से रहने देता। राजसूय-यज्ञ के अवसर पर जब इन्द्रप्रस्थ के भवनों को देखने के लिये दुर्योधन जा रहा था, उस समय कुछ अद्भुत घटनायें भी घटीं। महलों के स्फटिकमय[2] पत्थरों की चमकीली जगहों पर दुर्योधन को बहुत भ्रम हो गया। जहाँ जल नहीं होता वहाँ जल समझकर दुर्योधन अपने कपड़ों को ऊपर करके चलने लगा। इसी प्रकार जल से पूर्ण वापी बावड़ी को जल न समझकर आगे बढ़ता तो वह वस्त्रों सहित जल में गिर जाता। जल में गिरे दुर्योधन को देखकर भीम आदि तथा सभी सेवक हँसने लगते। इसी

१. द्र० आदि पर्व १२८।५४। २. द्र० सभापर्व ४७।४-१८।

प्रकार खुले द्वारों को हाथ से खोलने लगता और बन्द द्वारों को खुले समझकर आगे बढ़ता और जोर से सिर किवाड़ों में लग जाता। इस प्रकार की घटनाओं से दुर्योधन का बाल्यकालीन-ईर्ष्याभाव घी की आहुति से अग्नि की भांति भड़क उठा। इसी दुर्भावना से पूर्ण दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए में फंसाने का जाल फैलाया। यद्यपि अपने समय के महान् राजनीतिज्ञ विदुर ने जुए के प्रस्ताव को महान् दुष्कर्म[1] बताकर निन्दा भी की थी, किन्तु उसकी सलाह को नहीं माना गया और युधिष्ठिर जुआ खेलने हस्तिनापुर आ गये, शकुनि छलकपट में सफल हो गया। युधिष्ठिर क्रमश: साम्राज्य, चारों भाई, अपने आपको और द्रौपदी को दांव पर लगाकर हार गये। दुर्योधन की आज्ञा से द्रौपदी को सभा में लाया गया। विदुर के धमकाने का भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। दुःशासन भरी सभा में द्रौपदी को[2] घसीटकर लाया। किसी ने द्रौपदी को दासी और किसी ने वेश्या भी कहा। यहां द्रौपदी को एक वस्त्रा तो लिखा है, किन्तु चीरहरण तथा श्रीकृष्ण की सहायता का कोई वर्णन नहीं है। इस द्यूतजन्य समस्त काण्ड का अन्त में जब धृत[3] राष्ट्र को पता लगा तो उसने द्रौपदी को वर मांगने को कहा। द्रौपदी ने प्रथम वर में दासभाव से युधिष्ठिर की तथा दूसरे वर में दूसरे पाण्डवों की स्वतन्त्रता चाही। द्रौपदी सहित पांचों पाण्डव इन्द्रप्रस्थ जाने लगे, तो दुर्योधन को बड़ा पछतावा हुआ और धृतराष्ट्र के पुत्र मोह का लाभ उठाकर द्रौपदी सहित पांचों पाण्डवों को १२ वर्ष का वनवास तथा १३वें वर्ष का अज्ञातवास का आदेश दिया गया। वनवास के लिये जाते समय पाण्डवों के इष्टमित्र, सम्बन्धी तथा सहयोगी राजा भी मिलने आये, किन्तु तब कुछ भी नहीं कर सकते थे। इस अवसर पर सभापर्व (६९।१०) के अनुसार श्रीकृष्ण भी आये थे और उन्होंने सान्त्वना देते हुए यही कहा यदि मैं होता तो जुए का खेल होने ही नहीं होने देता। अब तो जो कुछ हुआ सो हुआ, अब तो तेरह वर्ष बीत जाने दो फिर साम्राज्य-स्थापना के लिये प्रयास करेंगे।

श्री कृष्ण का मिलन

बारह वर्ष तक द्रौपदी-सहित पाण्डव जंगलों में रहते रहे, किन्तु अज्ञातवास का एक वर्ष बिताना सरल नहीं था। जो राजकुमार राजसूय-यज्ञ करके और सभी राजाओं को अपने अधीन करके लोक विश्रुत हो चुके

---

१. द्र० सभापर्व ६१।६। २. सभापर्व ६६-६७ अ०।

३. द्र० सभापर्व ७१। ३१-३२।

थे, उनका छिपकर रहना कैसे सम्भव था ? इस पर भी दुर्योधन के गुप्त-चर चारों तरफ छोड़ रखे हों, तब और भी कठिन कार्य था। पाण्डवों ने यह अज्ञातवास राजाविराट के यहाँ वेष बदलकर व्यतीत किया। स्वयं राजा विराट को भी इनके भेद का पता नहीं लगा। अज्ञातवास का पूर्ण समय व्यतीत होने पर[1] राजा विराट के सभा भवन में ही पाण्डवों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण बलराम, द्रुपद, सात्यकि, तथा दूसरे सम्बन्धी व हित-चिन्तक इकट्ठे हुए। सभा में[2] श्रीकृष्ण ने सबके समक्ष पाण्डवों की दशा और दुर्योधन के द्वारा किये गये अन्याय का भी कथन किया। और द्यूत समय में किये प्रण का पूरा होने पर पाण्डवों का राज्य वापिस दिलाया जाये, इस विषय में श्रीकृष्ण का विचार यह था कि किसी तरह युद्ध के बिना ही यह कार्य सम्पन्न हो जाये और व्यर्थ में खूनखराबा न होवे। श्रीकृष्ण के बाद बलराम भी बोले, किन्तु युधिष्ठिर पर जुए का दोष लगा बैठे। इस पर सात्यकि व वृद्ध द्रुपद भी बोले। उन्होंने युद्ध की तैयारी करने की बात कही। श्रीकृष्ण ने फिर समझाया कि इस समय हम अभिमन्यु के बिवाह में आये हुए हैं। कौरव-पाण्डव दोनों ही हमारे आत्मीय-जन हैं। इसलिये मेरी इच्छा है कि शान्ति से ही कार्य लेना चाहिये और चेतावनी भी दी कि यदि युद्ध आवश्यक ही हुआ तो युद्ध में विजय अर्जुन की ही होगी। सभा में दुर्योधन के भी दूत बैठे थे। अपने समय के सर्वमान्य नीतिज्ञ श्रीकृष्ण के विचारों का बड़ा प्रभाव होता था। श्रीकृष्ण अपनी सलाह देकर द्वारिकापुरी वापिस आ गये। और वृद्ध द्रुपद के परामर्श से युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित को दूत बनाकर हस्तिना-पुर भेज दिया।

युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन पक्ष कैसे चुना—

विराट नगर से श्रीकृष्ण के द्वारिकापुरी वापिस आने पर कौरव-पाण्डव दोनों पक्षों में ही युद्ध की तैयारी होने लगी थी। देश-देशान्तरों के राजाओं को अपने-अपने पक्ष में करने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये थे। इसी सन्दर्भ में कौरव पक्ष से दुर्योधन और पाण्डव पक्ष से अर्जुन श्रीकृष्ण को निमन्त्रित करने के लिये द्वारिकापुरी पहुँचे। यद्यपि बहन सुभद्रा का अर्जुन

---

१. इसी बीच विराट की कन्या उत्तरा का विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ हुआ, जिसमें सभी सम्बन्धी आये हुए थे।

२. द्र० उद्योगपर्व १ अ०।

से तथा उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह-सम्बन्ध ही श्रीकृष्ण अर्जुन की अभिन्न मित्रता का परिचायक था पुनरपि धर्मात्मापुरुषों की दृष्टि में सभी अपने होते हैं। यद्यपि दुर्योधन पहले पहुँच गया था, किन्तु अभिमान-वश[1] श्रीकृष्ण के सिरहाने बैठा था और अर्जुन बाद में पहुँचे, किन्तु वे पैरों की ओर बैठे। श्रीकृष्ण जैसे ही जागे तो उन्होंने [अर्जुन को पहले देखा। दोनों ही ने प्रणाम करके अपने आने का प्रयोजन प्रकट किया। दोनों ही श्रीकृष्ण को अपने-अपने पक्ष में करना चाहते थे। श्रीकृष्ण भी एक बार धर्म संकट में पड़ गये। कुछ समय सोचकर बोले—दुर्योधन यद्यपि आप प्रथम आये हैं किन्तु मेरी दृष्टि अर्जुन पर प्रथम पड़ी, अतः मेरे लिये दोनों ही बराबर हैं। मैं दोनों की ही सहायता करना चाहता हूँ। मैं एक तरफ निश्शस्त्र रहूंगा और दूसरी तरफ मेरी समस्त सेना होगी। अर्जुन ने तुरन्त श्रीकृष्ण का चयन किया। दुर्योधन मन ही मन हर्षित हो रहा था कि अकेले निहत्थे श्रीकृष्ण को अपेक्षा यादवसेना ही ठीक रहेगी। यहां युद्ध में हथियारहीन होकर रहना इस बात का सूचक है कि श्रीष्ण युद्ध नहीं चाहते थे।

श्रीकृष्ण का स्वयं दूत बनकर शान्तिस्थापना का अन्तिम प्रयास—

युधिष्ठिर के दूत की बातों को धृतराष्ट्र, भीष्म, दुर्योधन, कर्ण आदि ने ध्यान से सुना। भीष्म ने दूत की बातों को मानने का आग्रह भी किया, किन्तु शकुनि और कर्ण का बहकाया दुर्योधन युधिष्ठिर की बातों को कैसे स्वीकार कर सकता था ? उस समय भीष्म से अर्जुन को वीरता की बातों ने वातावरण को और भी तनावपूर्ण बना दिया। अन्त में धृतराष्ट्र ने संजय को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजने का निर्णय किया। संजय ने जाकर धृतराष्ट्र का सन्देश सुनाया कि युद्ध करना महा अधर्म होगा। युद्ध से दोनों पक्षों की हानि होगी। युधिष्ठिर ने भी दूत की बातों से सहमति प्रकट की किन्तु हमें हमारा राज्य इन्द्रप्रथ का वापिस दे दिया जाये।

इस पर संजय शान्ति की बात ही करते रहे। अन्त में युधिष्ठिर ने कहा श्रीकृष्ण जैसा चाहें, या निर्णय करें, वैसा ही हमें स्वीकार है। श्रीकृष्ण ने इस प्रसंग में बहुत आदर्शों की बात भी कहीं, किन्तु साथ ही धर्म की रक्षा करना, किसी के साथ अन्याय न होने देना भी आवश्यक है। दुर्योधन ही पाण्डवों का राज्य छीनकर अधर्म कर रहा है। अतः तुम जाकर हमारा

---

१. द्र० उद्योगपर्व ७।१५-१६।

यही सन्देश कहो कि पाण्डवों का राज्य वापिस किया जाये। अन्यथा युद्ध में कौरव पक्ष का विनाश निश्चित है। ऐसा कहकर संजय को तो भेज दिया। किन्तु श्रीकृष्ण हृदय से सन्धि चाहते थे, वे युद्ध विभीषिकाओं को भलीभाँति जानते थे, अतः शान्ति के परमेच्छुक थे। दोनों तरफ युद्ध की तैयारी देखकर सन्धि की बातें आकाश पुष्प की भांति, असम्भव ही लग रही थीं। पुनरपि यही विचार किया कि मैं स्वयं हस्तिनापुर जाकर कौरवों को समझाने का प्रयास तो करता हूं। पुरुषार्थ करना हमारा कर्त्तव्य है, फल तो ईश्वराधीन ही है। श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर जाना युधिष्ठिर को अच्छा नहीं लगा कि कहीं दुर्योधन अशिष्टता न कर बैठे। श्रीकृष्ण को अपने ऊपर अत्यधिक विश्वास था और भय तो बिल्कुल था ही नहीं। भविष्य में लोग युद्ध के विषय में यह तो नहीं कहेंगे कि श्रीकृष्ण जैसे व्यक्तियों ने युद्ध को क्यों नहीं रोका था। और दुर्योधन पक्ष के धर्मप्रिय लोग भी न्यायान्याय को भलीभाँति समझ जायेंगे।

हस्तिनापुर जाने से पूर्व पाँचों पाण्डवों से विचार-विमर्श किया, इसके बाद द्रौपदी ने अपने अपमान की बात याद दिलाई। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को धैर्य बंधाते हुए कहा—या तो दुर्योधन मेरी बात मान लेगा अथवा उसे पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा, उसकी रानियाँ विलाप करती रहेंगीं। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर[1] के लिये चल पड़े। श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर-वासियों ने बड़े ठाट-बाट के साथ स्वागत किया। श्रीकृष्ण सबसे पहले विदुर के घर रह रही पाण्डवों की माता कुन्ती के पास गये, जो १३ वर्षों से पुत्रों की चिन्ता में रात-दिन चिन्ता में बिता रही थी। कुन्ती को समझाना कोई सरल कार्य नहीं था। कुन्ती ने रोते-रोते श्रीकृष्ण से बहुत से प्रश्न पूछे और अन्त में भीम अर्जुन के नाम यह सन्देश दिया कि जिस दिन के लिये क्षत्राणियाँ पुत्र को जन्म देती हैं, वह समय आ गया और यदि तुम अब भी शान्त बैठे रहे तो पछताना नहीं, प्रत्युत सारे क्षत्रिय तुम्हें धिक्कार करके निन्दा किया करेंगे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास गये, किन्तु दुर्योधन का आतिथ्य और भोजन स्वीकार नहीं किया और कहने लगे—राजन्![2] पराये घर का अन्न दो कारणों से खाया जाता है, या तो प्रेमवश, अथवा आपत्ति में। हमारे साथ तुम्हारी प्रीति तो है नहीं और हम संकट में भी नहीं हैं। अतः भोजन की बात करना व्यर्थ है। इसके

---

१. द्र० उद्योगपर्व ८२-८३ अ०।

२. उद्योगपर्व ९१।२५।

बाद श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के निवास पर गये और विदुर के घर भोजन किया। संसार में यह श्रीकृष्ण के स्वाभिमान का परमोच्च आदर्श रहा है कि जो एक राजा के भोजन को त्याग कर एक तपस्वी का भोजन स्वीकार करना। विदुरजी ने भी श्रीकृष्ण को बहुत कुछ कहा कि यह दुर्योधन चिकना घड़ा हो गया है। इस पर तुम्हारा कुछ भी प्रभाव नहीं होगा। श्रीकृष्ण ने विदुर जी को जो उत्तर दिया था वह उनके परम धार्मिक होने का प्रतीक है। वे बोले—दुर्योधन की दुष्टता को मैं भलीभांति जानता हूं, परन्तु सारी पृथिवी खून से लथपथ होती भी नहीं देखी जाती। इस युद्ध के जो भयंकर परिणाम होंगे वे कल्पनातीत ही होंगे। मैं तो एक बार समझाने का ही प्रयास अवश्य करूंगा और दोनों पक्षों की भलाई की बात कहने आया हूं। मानना या न मानना इन पर निर्भर है। इस प्रकार रात को विदुर जी के घर पर ही रहकर प्रातः उठे और प्रातःकालीन सन्ध्या-हवन[1] करके धृतराष्ट्र की सभा में जा पहुँचे। सभा में जाकर श्रीकृष्ण का जो भाषण हुआ, जिसमें युद्ध के गुण दोषों का भी वर्णन किया गया था। धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण से सहमत होते हुए भी कुछ कर नहीं सकते थे। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को ही समझाने को बात श्रीकृष्ण से कही। श्रीकृष्ण ने उसे भी बहुत समझाया, उसके ऊँचे कुल व वीरता की गाथा भी गाई। युद्ध से कुलनाश, वीरों का नाश तथा व्यर्थ में खूनखराबा होगा। श्रीकृष्ण के भाषण से प्रभावित होकर भीष्म, द्रोण विदुरादि ने भी खूब समझाया, किन्तु दुर्योधन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ और उसने दो टूक यही उत्तर दिया—श्रीकृष्ण! अब[2] मैं युद्ध के बिना पाण्डवों को सुई के नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूंगा।

दुर्योधन का उत्तर सुनकर श्रीकृष्ण ने उसको बहुत धमकाया, उसके अधर्मपूर्ण कार्यों को गिनाकर उसकी मूर्खता समझाई और उसे चेतावनी भी दी—हे मूर्ख! तेरे सिर पर अब काल मंडरा रहा है। श्रीकृष्ण की बातों से फुफकारते हुए सर्प की भांति दुर्योधन चिन्ता में पड़कर बड़बड़ाने लगा। तत्पश्चात् धृतराष्ट्र को भी समझाया कि तुम दुर्योधन को बांध कर देश, कुल व क्षत्रिय जाति की भलाई के लिये कारागार में डाल दो। मैंने भी इसीलिये अपने अधर्मी मामा कंस का वध कर दिया था। तुम पाण्डवों से सन्धि करके कुल की रक्षा करो। परन्तु धृतराष्ट्र पुत्रमोह से

१. उद्योगपर्व ९३।६।
२. उद्योगपर्व १२९।६।

इतना अन्धा हो चुका था कि वह कुछ कर नहीं सकता था। उसने विदुर को भेजकर गान्धारी को बुलवाया और दुर्योधन को समझाने को कहा। गान्धारी ने बहुत तरह से पुत्र को समझाया तथा कुलनाश का भय भी दिखाया, किन्तु दुराग्रही व अभिमान के नशे में चूर दुर्योधन ने एक नहीं सुनी। और वहाँ से उठकर श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने के इच्छुक शकुनि आदि के साथ मिल गया। सात्यकि को जब यह पता लगा तो वह बहुत क्रोधाकुल हो गया। अपनी सेना को तैयार रहने का आदेश देकर श्रीकृष्ण को भी सूचित कर गया। यद्यपि दूत को बन्दी बनाना निन्दनीय कार्य था, किन्तु राजमद से अन्धा व्यक्ति क्या नहीं कर सकता। धृतराष्ट्र भी लज्जा और क्रोध से कांपने लगा और दुर्योधन को बुलाकर खूब धिक्कारा। अन्त में श्रीकृष्ण सभा से विदा होकर कुन्ती के पास आये और कुन्ती ने अपने पुत्रों को सन्देश दिया कि वे क्षत्रिय धर्म को भूलें नहीं। क्षत्रिय होकर अन्याय को सहन करना कदापि उचित नहीं है। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण विराट्नगर की ओर प्रस्थान कर गये। इस प्रकार शान्ति का सत्प्रयास करने वाले श्रीकृष्ण यद्यपि अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए, किन्तु दुर्योधन की सभा में उपस्थित तथा धृतराष्ट्र भी यह समझ गये कि हमारा पक्ष अधर्म का है और हम पाण्डवों के साथ अन्याय कर रहे हैं। युद्ध में शत्रु-पक्ष का यह जनाना भी उसके मनोबल को कम करके मारने के समान ही होता है।

इस स्थल पर महाभारत में श्रीकृष्ण के विराट्रूप का भी उल्लेख किया गया है, किन्तु यह अनावश्यक व काल्पनिक होने से परवर्त्ती प्रक्षेप है। श्रीकृष्ण इतने बलवान् वीर योद्धा और आत्मविश्वासी थे उन्हें पकड़ना सम्भव ही नहीं था और सात्यकि, कृतवर्मा आदि वीर सभा में ही श्रीकृष्ण की रक्षा के लिये भी उपस्थित थे तथा दुर्योधन के पक्ष में भी भीष्म, द्रोण आदि महारथी दुर्योधन की दुष्टता को भलीभांति समझ रहे थे। यथार्थ में इनका मन पाण्डवों के पक्ष में ही था। ये लोग हृदय से पाण्डवों का राज्य देने के पक्ष में थे, अत: श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने में कभी सहयोग नहीं करते।

महाभारत संग्राम में श्रीकृष्ण की भूमिका

श्रीकृष्ण अपने समय के अपूर्वयोद्धा तथा ज्ञान-विज्ञान वेत्ता भी थे। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर क्षात्र धर्म के अतिरिक्त राजनीति के अद्भुत खिलाड़ी भी थे। महाभारत में शान्ति के सभी उपायों के असफल होने पर युद्ध के अतिरिक्त कोई मार्ग ही नहीं रहा था। महाभारत के संग्राम की बागडोर श्रीकृष्ण के हाथों में रही, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यद्यपि श्रीकृष्ण हृदय से पाण्डवों के पक्ष में रहे, किन्तु युद्ध में शस्त्राशस्त्र न उठाने का भी उनका महान् प्रण था। युद्ध में शस्त्राशस्त्रों की चलाने की दक्षता भी जहाँ आवश्यक है, वहाँ बुद्धि चातुर्य से उसका नेतृत्व भी परमावश्यक है। कुरुक्षेत्र के मैदान में यह भयंकर संग्राम १८ दिन तक चला, जिसमें समस्त विश्व के दिग्गज[1] राजा दो पक्ष बनाकर लड़े। इस संग्राम में जन-धन की कितनी क्षति हुई, इसका अनुमान लगाना अतीव दुष्कर कार्य है। महर्षि दयानन्द ने इस संग्राम के दुष्परिणाम बताते हुए लिखा है— (१) "महाभारत युद्ध में कौरव, पाण्डव और यादवों का **सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुटाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेश-विनाशक नीच के दुष्टमार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं।"** (स०प्र० १० समु०)

---

१. यह बात काल्पनिक नहीं। महर्षि दयानन्द ने लिखा है—"चीन का भगदत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन, यूरोप देश का बिडालाक्ष ...यवन जिसको यूनान कह आये और ईरान का शल्य आदि सब राजा... महाभारत युद्ध में सब आज्ञानुसार आये थे।" (स० प्र० ११ समु०)

इस संग्राम से आर्यावर्त्त देश को तो जबरदस्त धक्का लगा, क्योंकि इस भूमि पर यह संग्राम लड़ा गया। कौरव पक्ष में पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, शूर-वीर कर्ण और शल्य जैसे महारथियों ने सेना का नेतृत्व किया और पाण्डव पक्ष में धनुर्धर अर्जुन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, महाबली भीम आदि महारथी थे। परन्तु इस संग्राम में श्रीकृष्ण का विशेष महत्व रण-नीति चातुरी थी। युद्ध में आने वाली जटिल समस्याओं का समाधान जिस ऊहापोह के साथ तत्काल श्रीकृष्ण कर पाते थे, उसको देखकर शत्रु पक्ष के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी दंग रह जाते थे। हम यहां श्रीकृष्ण को प्रखर बुद्धि की ऊहा के कतिपय स्थलों का ही उल्लेख करके उनकी युद्ध-नीति, धर्म नीति, राजनीति एवं युद्ध करते हुए भी निष्काम कर्मयोग में रहकर सन्तुलन बनाये रखने के श्रीकृष्ण जी के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं को ही दिखाना चाहते हैं।

(१) **कर्त्तव्य विमुख अर्जुन को अमरता का उपदेश**—युद्ध क्षेत्र में कौरव-पाण्डवों के सेना-दल युद्धार्थ सन्नद्ध खड़े हैं, दोनों ओर से सेनापतियों ने युद्ध के शंख बजा दिये हैं। योद्धाओं की भुजायें अपना युद्ध कौशल दिखाने के लिये फड़क रहीं हैं। घोड़ों व हाथियों की टापों की ध्वनियों से आकाश-पाताल गूंज रहे हैं। ऐसे समय पाण्डव पक्ष के महारथी अर्जुन अपने गाण्डीव को छोड़कर रथ से उतर जाते हैं और श्रीकृष्ण से करबद्ध प्रार्थना करते हैं—भगवन्! मैं युद्ध नहीं करूंगा। ये मेरे सामने पूज्य दादा, गुरु तथा सम्बन्धी लड़ने के लिये खड़े हैं, इन्हें मारकर मैं पृथ्वी के खून से लथपथ राज्य का क्या करूंगा? उस समय श्रीकृष्ण ने क्षात्र धर्म, निष्काम कर्मयोग तथा आत्मा की अमरता का जो उपदेश अर्जुन को दिया, वह विश्व के इतिहास में अद्भुत एवं अलौकिक है, जिसे सुनकर मोहग्रस्त अर्जुन का मोह तो दूर हो गया और क्षात्रधर्म एवं कर्त्तव्य बोध की स्मृति होने से अर्जुन वीरता से युद्ध में प्रवृत्त हो गया। श्रीकृष्ण का आज भी वह पावन उपदेश हताश लोगों में आशा का, दुख मग्न मनों में सुखों का, कर्त्तव्यच्युत जनों में कर्मण्यता का, पथभ्रष्ट लोगों को कल्याण पथ पर चलने का सतत सन्देश दे रहा है। विश्व के सभी मनुष्य आज भी उस उपदेश को सुनने के लिये अनवरत प्रवृत्त हो रहे हैं, यही श्रीकृष्ण के पावन ज्ञान की सतत धारा भविष्य में भी आध्यात्मिक शान्ति का प्रवाह प्रवाहित करती रहेगी। वर्तमान में उस उपदेश को हम 'गीता' के नाम से जानते और पढ़ते हैं, परन्तु यह ७०० श्लोकों की गीता वैष्णव धर्म की काल्पनिक बातों से भी समय-समय पर (प्रक्षेपों से) भरती रही है। जिसमें

परस्पर विरोधी साम्प्रदायिक बातों को पढ़कर पाठक भ्रान्तिमुक्त नहीं हो पाता। पुनरपि इसमें अच्छी बातों को परित्याग कदापि नहीं किया जा सकता।

(२) पितामह-भीष्म के गिराने में श्रीकृष्ण की दक्षता

महाभारत का युद्ध १८ दिन तक चलता रहा। इनमें प्रथम १० दिनों में भीष्म कौरव दल के सेनापति रहे। भीष्म अद्वितीय योद्धा थे, उन्हें हराना सरल कार्य नहीं था। फिर भीष्म का स्नेह पाण्डवों पर भी था। अतः युद्ध में पाण्डवों को बचाकर युद्ध करते देख दुर्योधन से न रहा गया और भीष्म से बोला – दादा ! आप बढ़ते हुए अर्जुन को नहीं रोक पा रहे क्या बात है ? तीसरे दिन भीष्म ने बहुत भयंकर युद्ध किया। पाण्डवों की सेना उनके सामने न ठहर सकी। श्रीकृष्ण यह देखकर रथ से उतर गये और शस्त्र लेकर भीष्म की तरफ दौड़े। यह देखकर अर्जुन कुछ लज्जित हुआ और वह दौड़कर श्रीकृष्ण से बोला—आप अपना प्रण न तोड़ें, मैं ही भीष्म को मारूँगा। अब मैं पूरी शक्ति से युद्ध करूँगा। श्रीकृष्ण शान्त होकर रथ चलाने लगे। इस प्रकार आठवें दिन तक युद्ध होता रहा, किन्तु हार-जीत का परिणाम सामने न आ सका। नौवें दिन फिर भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें पाण्डव सेना की बहुत हानि हुई। पाण्डव पक्ष की विजय की आशा धूल में मिलने लगी। ऐसी निराश दशा में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को फिर उपदेश दिया—

ज्यायांसमपि चेत् वृद्धं गुणैरपि समन्वितम्।
आततायिनमायान्तं हन्यात् घातकमात्मनः ।।

भीष्म अ० १०८ ।।

अर्थात् शत्रुपक्ष में यदि गुणवान् वयोवृद्ध भी व्यक्ति आततायी है, उसको मारना पाप नहीं है। श्रीकृष्ण का उपदेश सुनकर अर्जुन से नहीं रहा गया, उसने भीष्म को मारने के लिये फिर प्रतिज्ञा की और दसवें दिन शिखण्डी को आगे करके अर्जुन युद्ध में आये। कहा तो यह जाता है कि भीष्म ने शिखण्डी को देखकर बाण नहीं चलाये। परन्तु युद्ध वर्णन से स्पष्ट होता है कि अर्जुन ने भीष्म का धनुष ही काट दिया था। भीष्म ने एक प्रचण्ड शक्ति का भी अर्जुन पर प्रहार किया, जिसे अर्जुन ने बीच में ही खण्ड-खण्ड कर दिया। ऐसी दशा देखकर कौरव दल के बड़े-बड़े महारथी भी सामन आये, किन्तु अर्जुन के सामने नहीं ठहर सके। इस प्रकार १०वें दिन भीष्म पितामह को बाणों की शय्या पर लिटाकर कौरव

दल का महान् स्तम्भ धराशायी कर दिया। इस भीष्म विजय में भी निरन्तर श्रीकृष्ण की नीति-कुशलता, सावधानता और उनके सामयिक उपदेश ही कारण बने।

(३) जयद्रथ के वध और अर्जुन की प्रतिज्ञा पालन में श्रीकृष्ण का बुद्धि-चातुर्य

पितामह भीष्म के युद्ध करने में अक्षम होने पर कौरव दल का सेनापति द्रोणाचार्य को बनाया गया। दुर्योधन ने गुरु से प्रार्थना की कि आप किसी भी तरह से ऐसी युद्ध व्यूह रचना करें कि जिसमें युधिष्ठिर को जीवित पकड़ा जा सके। गुरुजी ने कहा दुर्योधन ! तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है, जबकि अर्जुन युद्ध में उपस्थित न रहे। दुर्योधन ने इसके लिये योजना बनाई। त्रिगर्त देश के राजा सत्य रथ ने यह प्रतिज्ञा की कि हम अर्जुन को युद्ध क्षेत्र से बहुत दूर ले जायेंगे। इन त्रिगर्त बन्धुओं (संशप्तकगण) की पाण्डवों से पुरानी दुश्मनी चली आ रही थी। अर्जुन की अनुपस्थिति में द्रोण ने ऐसे चक्रव्यूह की रचना करी, जिसे भेदन का ढंग अर्जुन ही जानता था। यह देखकर पाण्डव पक्ष में चिन्ता की लहर दौड़ रही थी। अभिमन्यु वीर इस कार्य के लिये तैयार हो गया। अर्जुन की भाँति अभिमन्यु वीरता से लड़ता हुआ चक्रव्यूह में प्रविष्ट तो हो गया, किन्तु धृतराष्ट्र के जामाता जयद्रथ ने व्यूह में पाण्डवों की सेना को नहीं घुसने दिया। इस प्रकार अन्य शस्त्रास्त्रों की सहायता से भी वन्चित होकर वीर अभिमन्यु कौरव दल के बड़े-बड़े महारथियों व सेना से अकेला ही लड़ता रहा। इस युद्ध में अनेक महारथियों को इस वीर ने यमलोक भेज दिया और अनेकों को पीछे धकेल दिया। अपनी यह दुर्दशा देखकर कौरवदल के सात महारथियों ने युद्ध नियम के विरुद्ध अभिमन्यु पर एक साथ वार कर दिया और जब तक शस्त्र रहे तब तक कोई उसका वालबांका नहीं कर सका, परन्तु शस्त्रहीन होने पर क्षत्रियों को कलंकित करने वालों ने इस वीर पर वार-पर-वार करके घायल कर दिया और कौरवों की क्रूरता का शिकार होने से यह वीर यति को प्राप्त हो गया।

अभिमन्यु की वीरता की कहानी जहाँ रोमाँचकारिणी हैं तो उसकी उसकी नृशंस हत्या हृदय विदारिणी है। पाण्डव पक्ष पर तो इस वीर के मरने पर भयंकर वज्रपात हो गया। सायंकाल संशप्त-युद्ध से लौटने पर जब अर्जुन शिविर में आये तो अभिमन्यु के बध का दुःखद समाचार मिला अर्जुन ने तुरन्त ही प्रतिज्ञा की कि "अभिमन्यु के मरने में मुख्य कारण

जयद्रथ है जिसने पाण्डव सेना को चक्रव्यूह में नहीं घुसने दिया। अतः कल सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध नहीं कर सका तो स्वयं जलती चिता में प्रवेश कर जाऊंगा।"

अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार पाकर सारा कौरवदल जयद्रथ की सुरक्षा की योजना बनाने लगा और सुबह होते ही द्रोणाचार्य ने ऐसी सूची व्यूहरचना की, जिसे कोई भेदन नहीं कर सके। और उसके चारों तरफ कौरव दल प्राचीर की भाँति खड़े हो गये। इसदिन अर्जुन ने बहुत ही घमासान युद्ध किया। युद्ध में दुःशासन, द्रोण, दुर्योधन आदि सभी महारथियों को धकेलता हुआ अर्जुन आगे बढ़ने लगा। लड़ते-लड़ते सायंकाल होने लगा तब कुछ निराशा हुई, किन्तु श्रीकृष्ण पहले ही सावधान थे। उन्होंने शंख ध्वनि करके पहले से सचेत अपने सारथी दारुक से अपना दिव्यरथ मंगवाया। श्रीकृष्ण ने —'ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति' (द्रोणं १४५) सूर्य को ढकने वाला अन्धेरा योग द्वारा कर दिया। कौरव इसे समझ न सके और वे सूर्य को छिपता हुआ देखने लगे। इसी बीच जयद्रथ सिर ऊंचा करके देखने लगा, अर्जुन ने तुरन्त अवसर का लाभ उठाया और अचूक निशाना साधकर ऐसा बाण छोड़ा कि जयद्रथ का सिर कट कर उसके पिता क्षत्र की गोद में जा पड़ा। अन्धेरा छिन्न-भिन्न हो गया सूर्य अभी छिपना शेष था। इस प्रकार श्रीकृष्ण के बुद्धि-चातुर्य से जयद्रथ का वध और अर्जुन की प्रतिज्ञा की सफलता देखकर पाण्डव दल में खुशी ही खुशी छा गई।

कर्ण की अमोघ-शक्ति से अर्जुन की सुरक्षा—

जयद्रथ-वध की घटना से कौरव-पक्ष में बहुत खलबली हो रही थी। उस दिन रात्रि को भी संग्राम होता रहा। कर्ण ने पांडव सेना का बहुत संहार किया। यह देखकर कर्ण का प्रतिरोध करने के लिये अर्जुन जाने लगा। श्रीकृष्ण ने दिन भर के थके अर्जुन को रोक दिया। भीम-पुत्र घटोत्कच बहुत साहसी व वीर योद्धा था, उसने स्वयं जाने की इच्छा प्रकट की। घटोत्कच ने कर्ण के साथ घमासान युद्ध किया। कहते हैं कि इन्द्र ने कर्ण को एक अमोघ शक्ति नामक अस्त्र दिया था। जिसे कर्ण ने अर्जुन के लिए सुरक्षित रखा हुआ था। परन्तु युद्ध में घटोत्कच ने कर्ण को इतना विवश कर दिया कि उसे वह अमोघ शक्ति घटोत्कच पर चलानी पड़ी और उसकी मृत्यु हो गई। महाभारत के अनुसार घटोत्कच की मृत्यु से

पाण्डव पक्ष में शोक छा गया । किन्तु श्रीकृष्ण को बहुत प्रसन्नता हुई।[1] यह देखकर अर्जुन ने खुशी का कारण पूछा तो श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! तू समझ नहीं रहा है। आज जिस शक्ति को कर्ण ने तुम्हारे लिये रख छोड़ा था। वह घटोत्कच पर चलाई गई, जिससे तुम्हारे जीवन की रक्षा हो गई क्या यह खुशी की बात नहीं है ? अर्जुन श्रीकृष्ण का दाहिना हाथ था कृष्ण जो कुछ सोचते थे अर्जुन उसे क्रियात्मक रूप दे देता था। इस घटना को कतिपय लेखकों ने प्रक्षिप्त माना है। उनके कथनानुसार जयद्रथ वध के दिन भी अर्जुन कर्ण से युद्ध हुआ था। तब कर्ण ने वह शक्ति क्यों नहीं छोड़ी थी।

आचार्य द्रोण के वध में श्रीकृष्ण की सूझ–

पितामह भीष्म के युद्ध से पृथक् होने पर आचार्य द्रोण ने ५ दिन कौरव सेना का संचालन किया। इन पांच दिनों में द्रोणाचार्य ने जिस वीरता व पराक्रम से कौरव सेना का संचालन किया, उससे पाण्डव सेना के अनेक महारथियों को बलि देनी पड़ी। परन्तु दुर्योधन को उससे संतोष नहीं हुआ और वह कहने लगा कि आचार्य ! आप का पाण्डवों पर बहुत स्नेह है, जिसके कारण आप पांडवों को बचा जाते हो। आचार्य द्रोण को यद्यपि यह अच्छा नहीं लगा, पुनरपि अगले दिन द्रोणाचार्य ने ऐसा भयंकर युद्ध किया, जिसमें युद्ध-नियम के विपरीत दिव्यास्त्रों का भी प्रयोग करने लगे। अपनी सेना का संहार देखकर पाण्डव श्रीकृष्ण के पास आये। श्रीकृष्ण[2] बोले–युद्ध में यदि साक्षात् इन्द्र भी आजाये, तब भी आचार्य द्रोण को जीतना सम्भव नहीं है। अतः द्रोण को जीतने के लिए धर्मयुद्ध का त्याग करो और द्रोणाचार्य को अश्वत्थामा के मरने का समाचार सुनाओ क्योंकि अपने पुत्र अश्वात्थामा की मृत्यु सुनकर द्रोण युद्ध नहीं कर सकेंगे। श्रीकृष्ण के इस सुझाव को सम्भव है कि लोग श्रीकृष्ण के चरित पर कलंक भी बतायें, किन्तु यह उन्होंने युद्ध-नीति के अनुकूल ही किया था। क्योंकि द्रोणाचार्य भी[3] धर्म-विरुद्ध दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। इसी प्रसंग में विश्वामित्र, भारद्वाज आदि ऋषि भी द्रोण से प्रार्थना करते दिखाये हैं कि

---

१. द्र० द्रोण पर्व १८०।६। २. द्र० द्रोण पर्व १९०।१०, १२।

३. इसी प्रकार धर्म विवाद कार्यों में अभिमन्यु का वध, भूरिश्रवा द्वारा सात्यकि को गिरा देख तलवार चलाना, भूरिश्रवा द्वारा सात्यकि के दश पुत्रों की हत्या करना, इत्यादि कार्य द्रोणाचार्य देखते देखते हुए थे।

तुम अधर्म से युद्ध कर रहे हो। अतः अधर्मी को अधर्म से जीतने को श्रीकृष्ण ने बुरा नहीं माना। और स्पष्ट रूप में कहा—"द्रोण ने पाप का सहारा लिया है। उसी पाप द्वारा उसका हनन होना चाहिए। द्रोण जहाँ विद्वान् है। शूर है, वेदज्ञ है, वहाँ उसकी दुर्बलता है सन्तान का मोह। कोई उसे यह सुना दो-तेरा पुत्र मर गया, बस वहीं हथियार रख देगा।" श्रीकृष्ण ने यह उपाय अपने अनुभव से बताया था। अर्जुन को यह अधर्म नीति रुचिकर नहीं लगी, किन्तु भीम तैयार हो गया और अपनी सेना के एक अश्वात्थामा नामक हाथी को मरवा कर शोर मचवा दिया अश्वत्थामा[1] मारा गया। यह ध्वनि द्रोण के कानों तक पहुँची, सहसा उन्हें विश्वास नहीं हुआ किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर, जो कभी असत्य नहीं बोलते थे, उनके मुख से भी यही ध्वनि सुनकर द्रोण के हाथों ने शस्त्र उठाने से इन्कार कर दिया। द्रोण रथ में ही ध्यानावस्थित से हो गये। धृष्टधुम्न ने इसे अच्छा अवसर देखकर द्रोण का सिर धड़ से अलग कर दिया। अर्जुन ने गुरू को बचाने का भी प्रयास किया, किन्तु उससे पूर्व ही द्रोण की इह लीला समाप्त हो गई थी। इस प्रकार, शठे शाठ्यं समाचरेत्, की नीति बताकर श्रीकृष्ण ने आचार्य द्रोण को समाप्त कराया।

(६) श्रीकृष्ण ने अर्जुन की धर्म संकट से रक्षा की—

आचार्य द्रोण के पश्चात् कर्ण को कौरव सेना का सेनापति बनाया गया। कर्ण की इच्छा से श्रीकृष्ण के तुल्य अश्वविद्या में निपुण शल्य को कर्ण का सारथी बनाया गया। आज के युद्ध में अर्जुन संशप्तकों से युद्ध करने लगा और मुख्य रणक्षेत्र का कार्य भीम ने संभाला। भीम की सहायता के लिये युधिष्ठिर भी युद्ध में आ धमके। अवसर पाकर कर्ण ने युधिष्ठिर पर धावा बोल दिया और घायल होकर युधिष्ठिर को अपने शिविर में आना पड़ा। अर्जुन संशप्तकों और अश्वात्थामा से युद्ध करके जैसे ही भीम की तरफ बढ़ा, वहाँ उसे युधिष्ठिर नहीं दिखाई दिये। अर्जुन को इस बात की चिन्ता हुई। किसी से बड़े भाई का समाचार न पाकर अर्जुन युधिष्ठिर के शिविर में जा पहुंचे। युधिष्ठिर अपनी पराजय से अत्यन्त दुःखी थे। शरीर के घावों का तो उपचार हो ही रहा था, वे कर्ण का समाचार जानना चाहते थे।

सहसैव अर्जुन को अपने सम्मुख देखकर और कर्ण को जीवित जान-

---

१. द्रोण पर्व १६१-१६२ अ०

कर युधिष्ठिर को क्रोध आ गया और [illegible] अर्जुन को खूब धमकाया। साथ ही क्रोधवश 'धिक् गाण्डीवम्' कहकर गाण्डीव को भी धिक्कारा[1]। गाण्डीव की निन्दा सुनकर अर्जुन को बहुत गुस्सा आया, क्योंकि उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो गाण्डीव की निन्दा करेगा तो मैं तलवार से उसका सिर काट दूंगा। अर्जुन ने युधिष्ठिर को मारने के लिए तलवार निकाल ली। इस समय श्रीकृष्ण यदि अर्जुन को समझाकर शांत नहीं करते तो परिणाम कुछ और ही हो जाता। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि तुम धर्म के तत्व से अनभिज्ञ होने से मूर्ख हो। धर्म की सूक्ष्म गति को नहीं जानते। तुमने बाल्यकाल में जो प्रतिज्ञा की थी, उस पर जोर देना मूर्खता है। तुम क्रोधवश धर्म की मर्यादा को भूलकर गुरु तुल्य बड़े भाई के प्रति अपमानपूर्ण शब्द बोलकर मारने को उद्यत हो गये हो इत्यादि। उसके बाद अर्जुन को अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह आत्महत्या के लिए ही उद्यत हो गया। तब भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया और धर्मसंकट का उचित समाधान बताकर अर्जुन की रक्षा की।

(७) युद्धकालीन धर्म शिक्षा देकर वीर कर्ण का वध कराना—

धर्मराज युधिष्ठिर का आशीर्वाद लेकर अर्जुन फिर युद्ध क्षेत्र में आ गये और कर्ण को युद्ध के लिये ललकारा। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बहुत सावधान किया कि कर्ण को पराजित करना सरल कार्य नहीं है। इसलिये पूर्णतः सावधान होकर युद्ध करना है। कर्ण भी अपना प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन को ही मानते थे। दोनों वीर आमनेसामने आ धमके। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ही वीर आक्रमण तथा आत्मरक्षा करते हुए युद्ध में लगे हुए थे। कर्ण ने एक सर्पाकार बाण ज्या पर चढ़ाकर ऐसा फेंका कि हाहाकार मच गया। परन्तु यहाँ भी श्रीकृष्ण का कुशल सारथित्व काम में आया और कर्ण के इस भयंकर वार को घोड़ों को जानुओं के बल बैठाकर विफल कर दिया। रथ नीचे होने से कर्ण का बाण मुकुट से टकराकर निकल गया। अर्जुन का सिर बाल-बाल बच गया। इसके बाद अर्जुन के बाणों से कर्ण मूच्छित हो गया, अर्जुन ने इस अवसर का भी कोई लाभ नहीं उठाया। सचेत होने पर फिर संग्राम छिड़ गया। कर्ण के रथ का पहिया पृथिवी में धंस गया। कर्ण रथ से उतर कर पहिये को निकालने लगा और अर्जुन को कहा कि ठहर जा, अभी युद्ध मत कर, क्योंकि इस प्रकार युद्ध करना तुम्हारी कायरता होगी और धर्म विरुद्ध कहलायेगा। कर्ण के मुख से धर्म-

---

१. द्र० कर्णपर्व अ० ६८।२६।

की दुहाई सुनकर श्रीकृष्ण ने जो कर्ण को धमकाया[1] है, वह अलौकिक ही है। श्रीकृष्ण बोले—अरे राधासुत कर्ण ! तुम्हारे समान नीच मनुष्य आपत्ति में ही प्रारब्ध की निन्दा और धर्म का स्मरण करते हैं। जब शकुनि ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया और द्यूतकर्म से अनभिज्ञ युधिष्ठिर को छल से द्यूत में जीता था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था ? १३ वर्ष तक घोर वनवास जन्य कष्टों को सहने वाले पाण्डवों का राज्य वापिस न करके अन्याय करना क्या धर्मानुकूल था ? तुम्हारी सम्मति से दुर्योधन ने भीम को विष खिलाकर नदी में फिकवा दिया था, तब धर्म कहाँ गया था ? वारणावतनगर में लाक्षागृह बनाकर सोते हुए पाण्डवों को जलाने का षड्यन्त्र बनाने में तुम्हारा धर्म कहां गया था ? सभा में रोती हुई द्रौपदी को देखकर सभी दुष्ट कौरव हँस रहे थे, तब तुमने अधर्मपूर्ण कार्य को देखते हुए कुछ भी विरोध नहीं किया और सात महारथियों के साथ मिलकर तुमने भी अभिमन्यु को मरवाने में पूरा साथ दिया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था ? आज तू हमें धर्म का दुहाई देता है, ऐसा कहकर अर्जुन को युद्धकालीन धर्म की शिक्षा देकर आदेश दिया कि इस प्रकार आपत्तिग्रस्त शत्रु का युद्ध में वध करना पाप नहीं है, प्रत्युत पुण्य है, अतः इस अवसर को व्यर्थ मत खो। कर्ण भी श्रीकृष्ण की बातों से लज्जित सा हो रहा था और अर्जुन ने निरन्तर बाण-सन्धान करके कर्ण को घायल करके पृथिवी पर गिरा दिया।

(८) श्रीकृष्ण ने दुर्योधन का वध भी युद्धनीति से करवाया—

वीर कर्ण की मृत्यु के पश्चात् कौरव सेना के सेनापति शल्य बना, किन्तु वह युधिष्ठिर के हाथों से मारा गया। अब कौरवदल के चार महारथी ही शेष रह गये थे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और दुर्योधन। इनमें से दुर्योधन निराश और मृत्यु के भय से द्वैपायन[2] तालाब में जाकर छिप गया। समस्त संग्राम का मूल कारण तो दुर्योधन ही था, जिसके कारण महाभारत का भयंकर संग्राम हुआ। पाण्डव उसे कैसे छोड़ सकते थे। गुप्तचरों से पता लगाकर पाण्डव और श्रीकृष्ण तालाब पर ही जा पहुँचे। और धर्मराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन को युद्धार्थ ललकारा—हे दुर्योधन ! स्त्रियों की भांति जल में छिपकर और युद्ध से पलायन करके

---

१. द्र० कर्णपर्व ९० से ९२ अ०।

२. द्र० शल्यपर्व अ० १७।

अपने वंश को क्यों कलंकित करते हो। बाहर आओ और युद्ध करो। यदि तू इस युद्ध में से किसी एक को भी मार देगा, तो हम अपनी हार मानकर और सब राजपाट तुझे देकर जंगल में चले जायेंगे।" युधिष्ठिर की ललकार सुनकर दुर्योधन से नहीं रहा गया और वह अपनी मृत्यु निकट समझकर भी तालाब से निकल आया। श्रीकृष्ण को युधिष्ठिर की उदारतापूर्ण किन्तु असामयिक नासमझी की बातों एवं शर्त को सुनकर क्रोध भी आया। जो संग्राम इतनी कठिनाई से जीता है, उसे एक द्वन्द्व युद्ध पर ही हार-जीत मानकर खो देना कौन सी बुद्धिमत्ता हो सकती है। एक तरह से द्यूत की भांति युधिष्ठिर का यह दूसरा जुआ था। और यदि गदा-युद्ध में धुरंधर दुर्योधन भीम को छोड़कर किसी अन्य को युद्धार्थ लल-कारता, तो कैसी स्थिति हो जाती ? किन्तु श्रीकृष्ण कुछ कर नहीं सकते थे, बाण धनुष से छूट चुका था। परन्तु यह अच्छा हुआ कि दुर्योधन से स्वयं ही युद्धार्थ भीम का चयन किया। इस समय तक बलराम भी देशा-टन करके उसी स्थल पर पहुँच चुके थे। दुर्योधन बलराम का गदायुद्ध में शिष्य था। दोनों ही वीर गदायुद्ध के महारथी थे। भीम श्रीकृष्ण व युधिष्ठिर से दुर्योधन को पराजित करने का वचन देकर युद्ध में उतरे। उस समय अर्जुन ने पूछा कि इन दोनों में विजय किसकी होगी ? श्रीकृष्ण बोले- बलवान् तो भीम अधिक है किन्तु गदायुद्ध के दांव दुर्योधन अधिक जानता है। नियमपूर्वक युद्धमें भीम का जीतना कठिन है। हां यदि भीम को अपनी प्रतिज्ञा स्मरण आ गई, जो उसने द्रोपदी का सभा में अपमान होने पर की थी कि मैं दुर्योधन की जांघ गदा से तोड़ूंगा तो विजय भीम की हो सकती है। यद्यपि अर्जुन युद्ध नियमों का बहुत ध्यान रखते थे किन्तु युद्ध में कौरवों के द्वारा किये गये अधर्मपूर्ण कार्यों से अर्जुन भी धर्म युद्ध पर इतने दृढ़ नहीं रहे थे। अर्जुन ने जब भाई भीम को थका हुआ समझा तो जांघ पर हाथ मारकर भीम को प्रतिज्ञा स्मरण कराई। गदायुद्ध में नाभि से नीचे मारना वर्जित होता था, किन्तु प्रतिज्ञा स्मरण होते ही भीम ने दुर्योधन की जांघ पर पूरे बल से गदा से प्रहार किया और दुर्योधन घायल होकर अन्तिम श्वास लेने लगा। यह देखकर बलराम क्रोध में आ गये और भीम को मारने को उद्यत हो गये। उस समय श्रीकृष्ण ने समझाकर बलराम को शान्त किया और पापी दुर्योधन का अन्त युद्धनीति से ही करा कर धर्म पक्ष को विजय दिलाई।

अश्वमेधयज्ञ और धर्म साम्राज्य की स्थापना के उद्देश्य में सफलता

दुर्योधन के मृत्यु के बाद महाभारत का संग्राम समाप्त हो गया।

पाण्डव अपने शिविरों में आ गये। श्रीकृष्ण ने पहले अर्जुन को रथ से उतारा और बाद में स्वयं उतरे। उतरते ही रथ में आग लग गई और जल[1] कर भस्म हो गया। अर्जुन द्वारा रथ जलने का कारण पूछने पर श्रीकृष्ण बोले अर्जुन! यह रथ तो द्रोणादि के दिव्यास्त्रों से पहले ही जल जाता किन्तु मेरे योग[2] से ही बचा हुआ था। इसके पश्चात् श्री कृष्ण कौरवों के शिविर में गये और वहां विलाप करते हुओं को धैर्य बंधाया फिर हस्तिनापुर जा कर गान्धारी और धृतराष्ट्र जो अपने पुत्र की मृत्यु से बहुत दुखी थे उन्हें समझाना सरल नहीं था। श्रीकृष्ण ने इनको भी साम्त्वना दी और पाण्डवों के शिविर में आ गये। श्रीकृष्ण को कौरव दल में बचे कृपाचार्य, कृतवर्मा अश्वत्थामा से ही भय था कि यह छिपकर हमला भी कर सकता हैं। हुआ भी ऐसा ही, अश्वत्थामा ने निश्चिन्त सोते हुओं पर[3] हमला कर दिया और अपने पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न और पाण्डवपुत्रों का वध कर डाला।

युद्ध में विनाश देखकर (युद्ध समाप्त होने पर) युधिष्ठिर को बहुत वैराग्य हो गया, उसे समझना सरल नहीं था, श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को साथ लेकर वाण शय्या पर पड़े भीष्मपितामह के पास ले आये, वहाँ भीष्म के उपदेश से कुछ शान्ति हुई। व्यास जी तथा श्री कृष्ण की सम्मति से अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया गया। उसका उद्देश्य यही था कि समस्त देश, जो दो हिस्सों में विभक्त हो गया था, उसे फिर एकता सूत्र में बाँधकर राज्य की शक्ति बढ़ाना। इस यज्ञ में विजयी और परास्त सभी राजाओं ने भाग लिया। श्रीकृष्ण बीच में द्वारिकापुरी चले गये थे और युधिष्ठिर के निमन्त्रण पर फिर हस्तिनापुर आ गये। इस बार के महायज्ञ में आये सभी राजा प्रसन्न थे। द्वेष और वैमनस्य तो किसी के मन में भी नहीं रहा था। धर्मराज युधिष्ठिर को देश के साम्राज्य के सिंहासन पर बैठाकर श्रीकृष्ण ने अपने जीवन के प्रमुख लक्ष्य (धर्मराज्य की स्थापना करना) में सफल होकर वापिस द्वारिकापुरी आ गये। इसके बाद महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण के साथ पांडवों की भेंट हुई हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

---

(१) द्र० शल्य पर्व ३२/१३।

(२) यहां 'योग' शब्द पारिभाषिक है, अतः इसे कोई चमत्कार नहीं समझना चाहिए।

(३) यह हमला पांचालों के शिविर पर किया गया था।

श्रीकृष्ण के जीवन का अन्तिम समय

महाभारत-संग्राम के बाद श्रीकृष्ण के विषय में ऐसा कहा जाता है कि वे ३६ बर्ष तक जीवित रहे और उनका शेष समय द्वारिकापुरी में ही व्यतीत हुआ। जब श्रीकृष्ण समयानुसार वृद्ध हो चुके तब उनके प्रभाव के कम होने तथा यादवों में घमण्ड, राग, द्वेष तथा मदिरा पान आदि इतना बढ़ गया कि एक प्रकार से धर्म की सभी मर्यादायें छिन्न-भिन्न होने लगी। यदुवंशी परस्पर लड़ने लगे और उत्पात बढ़ने लगे। महाभारत के मौसल-पर्व (अ० १) में यादवों के नाश और श्रीकृष्ण के स्वर्गगमन की कथा इस प्रकार मिलती है।

"एक बार विश्वामित्र कण्व और नारद ये तीनों ऋषि घूमते-फिरते द्वारिकापुरी आ गये। उस समय यादव बहुत उद्दण्ड हो चुके थे। उन्होंने सत्यभामा के पुत्र साम्ब को स्त्री की भांति खूब सजाया और ऋषियों के पास ले जाकर दिल्लगी करते हुए बोले—यह स्त्री गर्भवती है, आप अपने योगबल से बतायें कि इस स्त्री के क्या बच्चा होगा—(पुत्र या कन्या)। यादवों की धृष्टता को ऋषि समझ गये और उन्होंने दुःखी होकर कहा—यह स्त्री न तो पुत्र को जन्म देगी और न ही कन्या को। इसके पेट से एक लोहे का मूसल निकलेगा, जिससे यादव वंश का नाश हो जाएगा।"

उपर्युक्त आख्यान सत्य है या असत्य, हम विवाद को छोड़कर इतना ही कह सकते हैं कि इससे यादवों की बढ़ती हुई उद्दण्डता का पता अवश्य लगता है। जिस महापुरुष के उद्योग एवं वीरता से यादव वंश कंस और जरासन्ध जैसे नृशंस राजाओं से भी सुरक्षित रहा, वही आज श्रीकृष्ण के अनुशासन में नहीं रहा।

श्रीकृष्ण अपने ही वंश वालों से दुःखी होकर बलराम के साथ वन में वानप्रस्थ होकर रहने लगे। अपना समस्त समय ईश्वर के ध्यान में ही बिताने लगे। इसी बीच बलराम भी योग के द्वारा जब शरीर त्याग गये तो श्रीकृष्ण बहुत दुःखी रहने लगे। उन्हें भी अब जीने की इच्छा नहीं रही। एक दिन अश्वत्थ वृक्ष के नीचे योग निन्द्रा में श्रीकृष्ण लेटे हुए थे। उस समय दूरस्थ जरा नामक शिकारी ने श्रीकृष्ण को मृग समझकर बाण का प्रहार कर दिया, उससे श्रीकृष्ण घायल हो गये। शिकारी को निकट आने पर अपनी भूल पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह चरणों में पड़कर क्षमा मांगने लगा। धर्म रक्षक दयालु श्रीकृष्ण के प्रसन्न मन से उसे अभय दान देकर क्षमा कर दिया और अपने पार्थिव शरीर को योग बल से त्याग

कर अमरता को प्राप्त कर परमपिता परमेश्वर का आश्रय लिया। श्री कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ होकर जीवन भर अधर्मी शत्रुओं पर तथा अन्त में मृत्यु पर भी विजय पायी। धन्य है ऐसे महापुरुष, जिनका समस्त जीवन ही धर्म की रक्षा करने और अधर्म के नाश में व्यतीत हुआ। ऐसे दिव्यविभूति पुरुष विरले ही होते हैं, कि जो कारागार की बन्द कोठरियों में जन्म लेकर भी न केवल स्वयं ही अपने भाग्य निर्माता बनकर स्वातन्त्र्य-सुख का भोग करते हैं, प्रत्युत जन-सेवक होकर विश्व के जनमानस पर छाई परतन्त्रता की दृढ़ बेडियों को काटकर स्वातन्त्र्य-सुख के स्वच्छ वातावरण में विचरण करने के अधिकारी बना देते हैं। ऐसे कर्मयोगी सच्चे प्राप्त पुरुष के प्रति उनके जन्म-दिवस पर हम सभी आर्य जन प्रणत-श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और उनके आदर्श सच्चरित्र को पढ़कर अपने और राष्ट्र के जीवन में उनके गुणों को अपनाने के लिये प्रतिज्ञा करते हैं। श्रीकृष्ण का जीवन एक प्रज्वलित दीपक है, और विजय का महास्तम्भ है। जब तक यह जीवनदीपक प्रज्ज्वलित रहेगा, तब तक मिथ्याभ्रान्तिजन्य काली घटायें छिन्न-भिन्न होने से विश्व को कल्याण मार्ग का पथ प्रदर्शन होता रहेगा। महर्षि व्यास ने और वेद में ठीक ही लिखा है—

(१) यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ।। महाभारत ।।

(२) यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना ।।यजुर्वेद ।।

(३) यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।। महाभारत ।।

शंका-समाधान

(१) **क्या श्रीकृष्ण भगवान् थे ? यदि नहीं तो उन्हें भगवान् शब्द से क्यों सम्बोधित किया जाता है :**

(उत्तर) आजकल हम भगवान् शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं, इसीलिये हमारे पूर्वजों (राम, कृष्ण आदि) के साथ प्रयुक्त भगवान शब्द से हमें ईश्वर विषयक सन्देह होने लगता है। यथार्थ में जैसे हम बल सम्पन्न को बलवान् और धन सम्पन्न को धनवान् कहते हैं। इसका आशय बल वाला या धन वाला ही होता है, उसी प्रकार जो भग सम्पन्न (भग वाला) है, वह भगवान् कहला सकता है। संस्कृत भाषा में भग शब्द के निम्नलिखित छः अर्थ हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ (विष्णु पुराण)

अर्थात् सर्वविध ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य ये छः अर्थ 'भग' शब्द के हैं। इनमें से एक भी गुण हो तो भगवान कहला सकता है। श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों में तो उनमें से प्रायः सभी गुण थे, इसी दृष्टि से उन्हें भगवान् शब्द से कहा गया है। यह तो एक विशेषण शब्द है, जो जहां भी विशेष्य के साथ प्रयुक्त होगा वहां उसकी विशेषता ही बतायेगा।

(२) **क्या आर्य समाज या महर्षि दयानन्द श्रीकृष्ण या श्री राम को नहीं मानते है ? अथवा उनकी निन्दा करते हैं ?**

(उत्तर) आर्यसमाज या महर्षि के विषय में यह एक बहुत बड़ी भ्रान्ति साम्प्रदायिक स्वार्थी लोगों ने फ़ैलायी है। यथार्थ में आर्य समाज या महर्षि दयानन्द ही श्री कृष्ण या श्री राम के सच्चे स्वरूप को मानते हैं, दूसरे तो अन्धभक्त होकर ही लकीर के फकीर बने हुए हैं। ये दोनों महापुरुष तो अपने-अपने समय में वीरता, धार्मिकता, धीरता, सज्जनतादि

गुणों के साक्षात् प्रतिभूति थे। आज हम उनके चित्र के ही पुजारी बन गये हैं, चरित्र के नहीं। आर्य समाज उनके चरित्र का सच्चा पुजारी है। इतना ही नहीं, इन साम्प्रदायिक लोगों ने श्रीकृष्ण जैसे आप्त पुरुषों पर जनसामान्य से भी निम्न स्तर के तरह-तरह के दोष लगाये हैं, जैसे कुब्जा-दासी से श्रीकृष्ण का समागम, स्नान करती हुई गोपिकाओं के कपड़े उठा कर भाग जाना, या उनके संग जल क्रीड़ायें करना, मक्खन चोर, बहुत सी पत्नी वाला, राधा जैसी पत्नी बताकर परस्त्रियों से प्रेम बताना इत्यादि।

(३) क्या श्रीकृष्ण की १६००० रानियाँ थीं ?

(उत्तर) यह बात सर्वथा असत्य है। सम्पूर्ण महाभारत को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण की एक ही पत्नी थी, जिसका नाम रुक्मिणी था। भागवत पुराण में प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा नरकासुर को मारकर श्रीकृष्ण ने १६००० राजकुमारियों से विवाह किया, ऐसा वर्णन है किन्तु यह सब घटना काल्पनिक है। श्री बंकिम बाबू ने इसका कारण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि श्रीकृष्ण के समय प्राग्ज्योतिष का राजा नरकासुर नहीं था। वहाँ का राजा तो भगदत्त था जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारा गया था। और विष्णु पुराण (४।१५।३६) के अनुसार तो श्रीकृष्ण के १८०००० पुत्र भी लिखे हैं। पाठक विचार करें कि इसी पुराण में श्रीकृष्ण की कुल आयु १२५ वर्ष बताई है। क्या इतनी आयु में इतने पुत्र सम्भव हो सकते हैं ? पर गप्पी को तो गप्प मारने से मतलब चाहे उसकी संगति लगे या न लगे। महाभारत में श्रीकृष्ण के एक ही पुत्र प्रद्युम्न का वर्णन आता है।

(४) क्या श्रीकृष्ण की सत्यभामा, आदि आठ पत्नियों का बात मिथ्या ही है ?

(उत्तर) हाँ ! सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि इनका भी महाभारत में कहीं उल्लेख नहीं है। महाभारत के पीछे पुराणकारों ने ही ऐसी मिथ्या, कल्पित तथा असंभव बातें लिखकर श्रीकृष्ण जैसे एक पत्नीव्रती पर भी मिथ्या दोष लगाये हैं।

(५) क्या श्रीकृष्ण बालकाल में दही व मक्खन चुराचुराकर खाया करते थे?

(उत्तर) यह बात भी मिथ्या है। श्रीकृष्ण का बाल्यकाल नन्द बाबा के घर पर बीता था। और नन्द बाबा के घर पर कितनी गायें

थीं, उसका वर्णन ऐसा मिलता है—'नौ लाख धनु नन्द बाबा के।" पाठक विचार करें कि जिसके घर पर नौ लाख गायें हों, उस घर में दूध-दही व मक्खन की कितनी भरमार होगी? क्या उस घर में बच्चों को दही मक्खन आदि की कमी हो सकती है? फिर बच्चे क्यों पड़ोसियों के घर दही मक्खन चुराने जायेंगे। इन गप्पी पुराणकारों के भी श्री कृष्ण जैसे प्राप्त पुरुष को चोर ही नहीं, प्रत्युत 'चौराग्रगणण्यम्' चोरों का सरदार कह कर बदनाम करने में लेशमात्र भी लज्जा नहीं आयी, यह महान् आश्चर्य है।

(६) राधा कौन थी? राधा का कृष्ण के साथ क्या सम्बन्ध था? हम सीताराम की भांति राधाकृष्ण का प्रयोग क्यों करते हैं? क्या राधा श्रीकृष्ण की पत्नी थी?

(उत्तर) जैसे श्रीराम के साथ सीता शब्द का प्रयोग उनकी पत्नी के कारण होता है, वैसे ही 'राधाकृष्ण' के प्रयोग को देखकर जनसामान्य में यह भ्रान्ति अवश्य होती है कि राधा श्रीकृष्ण की पत्नी थी। परन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण पर पुराणों के लेखकों ने जैसे अन्य मिथ्या दोष लगाये हैं—गोपाल[1]: कामिनीजारश्चौर जार शिखामणि: अर्थात् श्रीकृष्ण परस्त्रीगामी, चोर तथा व्यभिचारियों में शिरोमणि हैं। ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के साथ प्रेयसी के रूप में राधा का प्रयोग भी किया गया है। पूरे महाभारत में श्रीकृष्ण के साथ राधा का कहीं प्रयोग नहीं मिलता और न उनके साथ राधा का कोई सम्बन्ध ही माना है। भागवतपुराण को पंचमवेद ही वैष्णव मानते हैं, उसमें, विष्णु और हरिवंश पुराण में भी राधा का प्रयोग श्रीकृष्ण के साथ नहीं मिलता है। हाँ! महाभारत में कर्ण को पालने वाली अधिरत सूत की पत्नी का नाम राधा तो आया है। केवल ब्रह्मवैवर्त्त पुराण राधा का नाम आया है। इस पुराण में राधा के श्रीकृष्ण के साथ अनुचित सम्बन्धों का जो अश्लील व घृणित रूप दिखाया गया है, उसको देखकर तो लज्जा को भी लज्जा आ जाये, किन्तु पुराण बनाने वाले को लज्जा नहीं आयी। राधा कौन थी? इसका उल्लेख भी इस पुराण[2] में आया है—राधा वृषभानु नामक वैश्य की कन्या थी, उसका विवाह रायाण वैश्य के साथ हुआ था। और रायाण श्री कृष्ण की माता यशोदा का भाई था, इसलिये श्रीकृष्ण का मामा लगता था। इस सम्बन्ध से राधा श्रीकृष्ण की मामी लगी। परन्तु इस पुराण को बनाने वाले ने

---

१. द्र० 'गोपाल सहस्रनाम' २. द्र० ब्रह्म वैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड २ प्र० ४९।

श्रीकृष्ण और राधा का जो चित्रण (ब्रह्० वै० ख० ४ अ० १६) किया है, वैसा कोई व्यभिचारी व्यक्ति ही लिख सकता है और मन्दिरों में राधा-कृष्ण की मूर्ति बनाकर पूजा का रूप भी अत्यन्त परवर्त्ति है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने "मध्यकालीन धर्म साधना" पुस्तक में इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—'प्रेम विलास' और 'भक्ति रत्नाकार' पुस्तकों के अनुसार वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ राधा की मूर्ति या पूजा नहीं होती थी। इसका अभिप्राय यह है कि इन पुस्तकों से भी पीछे राधाकृष्ण की मूर्ति की और पूजा होने लगी है। इन पुस्तकों का समय लगभग ४२४ वर्ष पूर्व हैं, अतः राधाकृष्ण की कल्पना भी उसके बाद की है, जिसे किसी कामुक व्यक्ति ने ही बनाया है। आजकल मन्दिरों व कीतनों में श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का कोई नाम नहीं लेता और इस कल्पित राधा की पूजा या कीर्तन ही होता है, यह बहुत ही दुर्भाग्य की बात है।

(७) श्रीकृष्ण को पौराणिक लोग ईश्वर का अवतार मानते हैं। क्या महारत में कहीं श्रीकृष्ण का अवतार रूप में वर्णन मिलता है ?

(उत्तर) श्रीकृष्ण की राजसूय यज्ञ के अवसर में भीष्मपितामह ने यह कहकर प्रशंसा की है कि श्रीकृष्ण वेद-वेदांगों के पूर्ण ज्ञाता थे। वेदों का ज्ञाता व्यक्ति वेद-विरुद्ध बातें कैसे कह सकता है। वेद में ईश्वर को अकाय शरीर रहित और अज-अजन्मा कहा गया है। अतः ईश्वर का अवतारवाद तो कभी सम्भव ही नहीं है। और श्रीकृष्ण के भक्तों को कम से कम श्रीकृष्ण की बात तो माननी ही चाहिये। श्रीकृष्ण ने महाभारत में कहीं अपने को ईश्वर नहीं कहा, प्रत्युत श्रीकृष्ण[1] स्वयं प्रातःसायम् ईश्वर-भक्ति करते हुए मिले हैं। और एक स्थान पर तो अपने ईश्वर न मानने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः ।
दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्त्तुं कथंचन ।।

उद्योग० प्र० ७१ ।।

अर्थात् मैं पूर्ण पुरुषार्थ के साथ कार्य करूंगा, परन्तु दैव-ईश्वरीय कार्यों में मेरा कुछ भी वश नहीं है। अब पाठक स्वय विचार करें कि श्रीकृष्ण की बात माननी चाहिये या दूसरे गप्प मारने में दक्ष पुराणों के रचयिताओं की ?

---

१. द्र० अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।
रथमोचनमाविश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ।। उद्योग० ३।२१ ।।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

अष्टमी प्रति वर्ष आती ।

भाद्रपद की तमाच्छादित यामिनी का तम हठाती ।।
युगों पहले एक द्वापर, की निशा थी वह भयंकर ।
जब कि कारामध्य आय, (युग पुरुष) था इस अवनि पर ।।
किये जीवन भर सतत थे, क्रान्ति के ही कर्म उसने ।
'अनय से संघर्ष' कोही, था बनाया धर्म उसने ।।
तभी तो भगवान् कहकर सृष्टि उसको सिर झुकाती ।।१।।
अष्टमो प्रति वर्ष आती ।।

क्रान्तिकारी युग पुरुष की, जीवनी से सीख लेकर ।
प्रेरणा कर प्राप्त हम भी, बढ़े जीवन में निरन्तर ।।
यही सबसे श्रेष्ठ पूजन, यही चरणों पर सुमन दल ।
व्यर्थ आडम्बर तथा, उपवास व्रत का ढोंग केवल ।।
'कृष्णा' से हमको मिलो है, आह ! कितनो श्रेष्ठ थाती ।।२।।
अष्टमी भी प्रति वर्ष आती ।।

[श्री मयङ्क]

योगिराज श्रीकृष्ण का पावन स्मरण

[स्व० स्वामी धर्मानन्द विद्यामार्त्तण्ड]

योगीराज श्री कृष्णचन्द्र का, श्रद्धापूर्वक स्मरण करें।
उनके पावन गुण-सौरभ को, अपने अन्दर ग्रहण करें ॥१॥

उनका जीवन यज्ञ-रूप था, जनता-हित में रहा समर्पित।
हम भी उनकी यज्ञ-भावना, अपने अन्दर भय भरें ॥२॥

धर्म के रक्षक बने वे, राजनीति मर्मज्ञ महान्।
ज्ञानी ध्यानी योगी गायक, क्यों न उनका मान करें ॥३॥

रखा जिसने जग में आकर, सच्चा कर्म-योग आदर्श।
किये सदा निष्काम कर्म ही, हम उनका अनुसरण करें ॥४॥

विद्या विनय युक्त विप्रो में, वैसे ही चण्डालों में।
समदर्शी-पण्डित होते इस, समता को हम हृदय धरें ॥५॥

तेरा है अधिकार कर्म में, कभी न उसके फल में है।
उनके इस उपदेश-रत्न को, ग्रहण करें निर्भय विचरें ॥६॥

गुण-गण के सागर होकर भी, जिनमें नहीं मद का लवलेश।
विप्रों के चरणों को धोया, जिन उनका गुणगान करें ॥७॥

होकर सर्वमान्य राजा भी, निर्धन से न विसारा प्रेम।
उसके सारे कष्ट निवारे, ऐसे नरवर को सिमरें ॥८॥

धर्म-राज्य स्थापित करना ही, जिनका रहा मुख्य उद्देश्य।
धर्मोद्धारक, पापनिवारक, ऐसे योगिवर को सिमरें ॥९॥

गीतामृत का पान कराकर, किया पार्थ को अनुपम शूर।
इससे सब जगके उपदेष्टा, शिक्षक-वर का मान करें ॥१०॥

यज्ञ-योग की ज्योति जलाना, सबको जिसने सिखलाया।
योगिराज के चरणों में हम, श्रद्धांजलि सप्रेम धरें ॥११॥

श्री कृष्ण-नीति

[कविवर 'प्रणव' शास्त्री एम०ए० शास्त्री सदन, रामनगर कटरा आगरा]

कृष्ण की विचारधारा, धरा पर बहेगी तभी,
जनता को सुख-शान्ति, चैन मिल पायेगा।
उसकी निराली नीति रीति की प्रतीति से ही,
सत्य जीत ज्ञान को सम्मान मिल पायेगा॥
इस जैसी दृढ़ता, चतुरता, सुविशालता से,
सिद्धियों का स्वर्णिम-कमल खिल पायगा।
कृष्ण की कठोरता के कौशल-कला के बिना,
बढ़ता आतङ्क का न दुर्ग हिल पायगा॥
कृष्ण ने कभी न समझौते का बजाया ढोल,
पोल में घुसा, नहीं घुसने किसी को दिया॥
जनता के दुःखों की कहानी से दुःखी रहा,
दुष्ट अन्यायी को भी टिकने नहीं था दिया॥
कंस, जरासन्ध, शिशुपाल जैसे घातकों का,
निश्चय निडरता से पापियों का वध किया॥
अन्ध, अध अन्याय को झुकाया, कभी न शीश,
जब तक जिया कृष्ण शान से सदा जिया॥
जनता-जनार्दन की सेवा का जो व्रत लिया,
कृष्ण ने उसे तो श्रद्धा भक्ति से निभाया था।
राष्ट्र-द्रोह, फूट की बेल बढ़ने न दी थी,
एक धर्म राज्य का स्वप्न ही सजाया था॥
बड़े-बड़े क्रूर शूरवीरों के थे कान काटे,
जगती में पौरुष का सिक्का ही जमाया था।
मानता है विश्व पूर्ण दुःखों से दिलाने मुक्ति,
धरा पर धरा का पुत्र निराला ही आया था॥
धोखा जो है देता उसे धोखा सदा देते रहो,
राष्ट्र द्रोहियों के लिये नगन तलवार है।
आपको न माने उसके बाप को न मानो जो,
कृष्ण-नीति रीति का यही तो एक सार है॥

ब्रजचन्द्र कृष्ण प्यारे

ब्रजचन्द्र कृष्ण प्यारे, भारत में फिर से आओ।
जन-मन सिसक रहा है, रस शांति का बहाओ ॥
सत्याचरण निर्बल है, अन्याय-छद्म-छल है।
मिथ्या, अनीति, चोरी, पापाचरण प्रबल है ॥
अपनी सुरीली वाणी व, शंख-ध्वनि सुनाओ।
कर्तव्य-च्युत सभी हैं, गीता का ज्ञान गाओ ॥
श्रीकृष्ण साश्रु बोले, कैसे बताओ आऊँ ?
बदनाम कर दिया है, भक्तों ने क्या बताऊँ ?
श्री नन्द घर पला मैं, दधि-दूध खूब खाया।
नवनीत के भंडारी, को चोर हा! बताया ॥
सत्याचरण का पालक, पापों से दूर था मैं।
पर-दारा-पूज्यमाता, सा मानता सदा मैं ॥
रासादि नारियों से, कब मैंने था रचाया ?
कुब्जा-कुलक्षणी से, कब प्रेम मुझको भाया ?
जल-केलि-रत-रमणियों के, थे वस्त्र कब चुराये ?
निर्लज्ज-पाप-कर्मों के, दोष क्यों लगाये ?
प्रिय रुक्मिणी सी पत्नी, पाकर निहाल था मैं।
कब राधिका-प्रणय का धिक् प्रेम जाल था मैं ?
देखो पुराणियों ने, कैसा किया कलंकित ?
उन धूर्त-पामरों से, मैं हो रहा सशंकित ॥
अब तुम बताओ प्यारे, कैसे धरा पे आऊँ।
इन भेड़-चालियों को, कैसे सुमति सिखाऊँ ?
यदुवीर, सोगिबर की, करुणा-कथा-व्यथा सुन।
वह भद्र आर्य बोला, कुछ सोचकर हृदय गुन ॥

हे ! योगिराज मोहन ! यह क्या सुना रहे हो ?
किन मन्द-मति जनों की, बातें बता रहे हो ?

गोपाल तुम कहाये, गो वंश वृद्धि करके ।
गोपालना सिखाया, वन में विचर-विचर के ।।

संघर्ष में ही जन्में, संघर्ष लक्ष्य धारा ।
सत्कर्म की कुशलता को, योग में विचारा ।।

तप से सुभार्या संग, बारह बरस बिताया ।
निज सम सुवीर, अनुपम, प्रद्युम्न पुत्र पाया ।

शिशुपाल, कंस आदिक शत्रु अनेक घाले ।
रणनीति ने तुम्हारी अरिदल विदार डाले ।।

रत-धर्म पाण्डवों का, था न्याय पक्ष लेकर ।
भारत-महा रचाया, दुष्टों को मात देकर ।।

धारण करो 'सुदर्शन', पुनि एक बार आओ ।
खल-दल विनाश करके, सुख-शांति-रस बहाओ ।।

तम-कूप में पड़े जो, आकर हृदय बदल दो ।
है कामना यही मम, 'निशंक' आत्म बल दो ।।

[रामकृष्ण आर्य 'निशंक' (प्रधान)
आर्य समाज वार्ड, गोविन्द नगर कानपुर

महाभारतकालीन महापुरुषों की दृष्टि में श्रीकृष्ण का चरित

(१) महर्षि वेदव्यास की सम्मति

> यो वै कामान्न भयान्न लोभान्नार्थकारणात्।
> अन्यायमनुवर्त्तेत स्थिरबुद्धिरलोलुपः।
> धर्मज्ञो धृतिमान् प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशवः॥
>
> (महा॰ उद्योग॰ अ॰ ८३)

अर्थात् पाण्डवों की ओर से दूत रूप में जाने के लिये उत्सुक श्री कृष्ण के विषय में वेदव्यास जी कहते हैं-श्री कृष्ण लोभ रहित तथा स्थिर बुद्धि हैं। उन्हें सांसारिक लोगों को विचलित करने वाली कामना, भय, लोभ या स्वार्थ आदि कोई भी विचलित नहीं कर सकता, अतएव श्री कृष्ण कदापि अन्याय का अनुसरण नहीं कर सकते। इस पृथ्वी पर समस्त मनुष्यों में श्री कृष्ण ही धर्म के ज्ञाता, परम धैर्यवान और परम बुद्धिमान् हैं।

(२) पितामह भीष्म की सम्मति

> ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः।
> पूज्ये ताविह गोविन्दे-हेतू द्वावपि संस्थितौ॥
> वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाप्यमितं तथा।
> नृणां लोकेहि कस्यास्ति विशिष्टं केशवादृऋते॥
>
> (महा॰ सभा॰ ३८ अ॰)

अर्थात् धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में अग्र पूजा के अवसर पर किसी सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति की पूजा की जानी थी। उस समय श्री कृष्ण का नाम प्रस्तुत करते हुए भीष्म जी कहते हैं—संसार में पूजा के दो ही मुख्य कारण होते हैं—ज्ञान और बल। श्री कृष्ण में ये दोनों गुण सर्वाधिक हैं, अतः श्री कृष्ण ही पूजा के योग्य हैं। इस समय संसार में कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है कि ज्ञान तथा बल में श्री कृष्ण से अधिक हो।

(३) महात्मा विदुर की सम्मति

अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं जिहीर्षसि।
न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया ।।
अन्यो धनंजयात् कर्त्तुमेतत् तत्त्वं ब्रवीमि ते ।।
(महा०उद्योग०अ० ८८)

अर्थात् महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं हे धृतराष्ट्र! पृथ्वी पर श्री कृष्ण सबके पूज्य हैं और वे जो कुछ कह रहे हैं वह हम सबके कल्याण की भावना से ही कह रहे हैं। और यह तुम्हारी बड़ी भूल है कि मैं श्री कृष्ण को बहुमूल्य उपहार देकर अपने पक्ष में कर लूंगा। श्री कृष्ण की अर्जुन के साथ जो दृढ़ मित्रता है, उसे आप धनादि के प्रलोभन से समाप्त नहीं कर सकते।

(४) धर्मराज युधिष्ठिर की सम्मति

तव कृष्ण प्रसादेन नयेन च बलेन च।
बुद्धया च यदुशार्दूल तथा विक्रमणेन च ।।
पुनः प्राप्तमिदं राज्यं पितृपैतामहं मया।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुनः पुनर्रिदम ।।
(म० शान्ति० ४३ प्र०)

अर्थात् महाभारत संग्राम की समाप्ति पर युधिष्ठिर श्री कृष्ण के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए कहते हैं—हे यादवों में श्रेष्ठ तथा शत्रुओं को जीतने में दक्ष श्री कृष्ण! हमें यह हमारा पैतृक राज्य आपकी कृपा से प्राप्त हुआ है। आपकी शूरवीरता, अद्भुत युद्धनीति, लोकोत्तर बुद्धि कौशल तथा पराक्रम से ही हम इस संग्राम में विजयी हुए हैं, एतदर्थ आपका बार-बार धन्यवाद करते हैं।

(५) कौरवयुवराज दुर्योधन की दृष्टि में श्री कृष्ण का स्थान

श्री कृष्ण दुर्योधन के विपक्ष में तथा उसको हराने में मुख्य कर्णधार थे। पुनरपि श्रीकृष्ण के प्रति उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। स्वयं दुर्योधन महात्मा विदुर के समझाने पर यह स्वीकार करता है—

स हि पूज्यतमो लोके, कृष्णः पृथुललोचनः।
त्रयाणामपि लोकानाँ विदितं मम सर्वथा ।।
(महा० उद्योग० ८९। ५)

अर्थात् हे विदुर जी! मैं यह भलीभांति जानता हूं कि श्री कृष्ण तीनों लोकों में सर्वाधिक पूज्य हैं।

(६) कुरुराज धृतराष्ट्र

मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं न वेत्तीह केशवम् ।
सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः ।
प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ।।

अर्थात् मेरा पुत्र दुर्योधन श्री कृष्ण की महिमा का मोहवश निरादर कर रहा है । श्री कृष्ण में इतने गुण हैं, उनको गिनाया नहीं जा सकता । और इसीलिये उन्हें कोई पराजित नहीं कर सका है ।

श्रीकृष्ण परमेश्वर के परमभक्त थे

[१] प्रातः कालीन दिनचर्या

महान् पुरुषों की दिनचर्या भी आदर्श और जीवन को सुखी बनाने वाली होती है। 'महाजनो येन गतस्सः पन्थाः' इस लोक प्रसिद्ध वाग्धारा के अनुसार सामान्य जन महान् पुरुषों का ही अनुकरण करते हैं। श्री कृष्ण केवल राजनीति के ही खिलाड़ी नहीं थे, प्रत्युत योगिराज भी थे। उनके जीवन के कतिपय आदर्श द्रष्टव्य हैं—

वैशम्पायन जी जनमेजय से कहते है—हे जनमेजय भगवान् श्री कृष्ण जब आधा पहर रात बीतने में शेष रह गया तब वे शय्या को छोड़ देते थे। और जागकर ध्यानमार्ग में स्थित हो सत्य सनातन परमेश्वर का चिन्तन, स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना किया करते थे।

परमेश्वर के ध्यान के पश्चात् दैनिक कर्म शौचादि से निवृत होकर स्नान करते थे और फिर जपने योग्य गायत्री मन्त्र का जप करके अग्नि-होत्र भी करते थे। तत्पश्चात् चारों वेदों के विद्वानों को बुलाकर वेद-मन्त्रों का पाठ एवं उपदेश कराकर विद्वानों को गायों का दान किया करते थे।

इस उपर्युक्त कथन से सम्यक् स्पष्ट हो रहा है कि श्री कृष्ण स्वयं पर-मात्मा नहीं थे, क्योंकि वे तो स्वयं परमात्मा की भक्ति, हवन तथा वेदों का स्वाध्याय, हवन तथा निदिध्यासन भी किया करते थे। देखिये महा-भारत के प्रमाण—

ततः शयनमाविश्य प्रसुप्तो मधुसूदनः।
याममात्रार्धशेषायां यामिन्यां प्रत्यबुद्धयत ॥
स ध्यानपथमाविश्य सर्वज्ञानानि माधवः।
अवलोक्य ततः पश्चात् दधौ ब्रह्म सनातनम् ॥
ततः उत्थाय दाशार्हः स्नातः प्राञ्जलिरच्युतः।
जप्त्वा गुह्यं महाबाहुरग्नीनाश्रित्य तस्थिवान् ॥

ततः सहस्रं विप्राणां चतुर्वेदविदां तथा ।
गवां सहस्रेणैकैकं वाचयामास माधवः ।।

(महा० शान्ति० ५३वां अध्याय)

(२) **यात्रा करते समय भी श्रीकृष्ण सन्ध्यादि दैनिक कर्मों को अवश्य करते थे :—**

(क) श्रीकृष्ण सन्धि का सन्देश लेकर जब हस्तिनापुर जा रहे थे तो मार्ग में ऋषियों के आश्रम में विश्राम किया, उस समय वैशाम्पायन जनमेजय से कहते हैं—

कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः ।
उपतस्थे विवस्वतं पावकं च जनार्दनः ।।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन् कल्याणमग्रतः ।।

(महा० उद्योग० ८३ वां अ०)

अर्थात् श्रीकृष्ण ने दैनिक स्नानादि कार्यों को करके प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दन तथा दैनिक अग्निहोत्र किया। तत्पश्चात् आश्रम के ऋषियों से कल्याणप्रद उपदेश सुना।

(ख) अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ।।

(महा० उद्योग ८५।२१)

श्री कृष्ण जिस समय वृकस्थल पर पहुंचे, तब सूर्य अस्त होने वाला था, उस समय श्री कृष्ण ने रथ को रुकवाया और रथ से उतरकर शौच-स्नानादि करके सन्ध्या करने के लिये बैठ गये।

(ग) श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के निवास स्थान पर रात्रि को बहुत देर तक बातचीत करते रहे। वहीं रात्रि में विश्राम किया। प्रातःकाल होने पर—

तत उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम् ।
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातः कार्यं जनार्दनः ।।
कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः ।
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ।।
अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ।।

(महा० उद्योग० ९४ वां अ०)

श्रीकृष्ण जी ने ब्राह्ममुहूर्त में उठकर प्रातःकालीन शौच स्नानादि कार्यों को किया, तत्पश्चात् सन्ध्या तथा अग्निहोत्र किया। दुर्योधनादि श्रीकृष्ण से जब मिलने आये थे, उस समय वे सन्ध्यावन्दन में लगे हुए थे।

(३) **श्रीकृष्ण युद्ध में भी सन्ध्या—समय होने पर सन्ध्या करना नहीं छोड़ते थे—**

ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ॥

(महा० द्रोण० अ० ७२)

संशप्तकों से युद्ध करते हुए अर्जुन को कुछ अनिष्ट की आशंका मन में होने लगी। उसकी आशंका को (अभिमन्यु की मृत्यु की घटना की आशंका) दूर करके श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ने ही परमेश्वर की उपासना की और फिर रथारूढ़ होकर युद्धस्थल से अपने शिविर के ओर चल पड़े।

क्या श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार थे : एक समीक्षा

(श्रीराम आर्य, कासगंज)

हमारे समाज की यह विशेषता रही है कि जिस किसी महापुरुष ने देश को पराधीनता से मुक्ति दिलवाई अथवा अत्याचारियों के दमन से जनता को राहत पहुँचाई, हमने उसे महामानव न मानकर साक्षात् परमात्मा का अवतार ही मान लिया। और परमात्मा का अवतार मान लेने पर हमने उसमें सभी अलौकिक दिव्य ईश्वरीय गुणों का होना जन्म से ही स्वीकार कर लिया तथा उसे ईश्वर सिद्ध करने के लिये नाना प्रकार की काल्पनिक कथाओं का सम्बन्ध उसके जीवन के साथ बताकर उसके ईश्वरत्व का प्रभाव सामान्य जनता पर जमाने का भगीरथ प्रयास किया गया। फलतः उसे भगवान् मानकर जनता धीरे-धीरे पूजने लगी। महान् पुरुषों के जीवन चरित्रों का अनुकरण करके दूसरे मनुष्य भी वैसा बनने का प्रयास करें, यह मानवीय भावना महापुरुषों को ईश्वर मानने पर समाप्त हो गई। क्योंकि वे तो ईश्वर ही थे, हम वैसा कार्य कैसे कर सकते हैं? इससे मानव की उन्नति एवं सोचने के सभी मार्ग अवरुद्ध हो गये।

(१) श्रीकृष्ण की शिक्षा गुरुकुल में हुई थी—

परन्तु इन महापुरुषों को ईश्वर का अवतार बनाने वाले अल्पज्ञ लोगों की कल्पनायें भी विकलांग होने से अधूरी ही रहीं। जैसे श्रीकृष्ण जैसे आप्त पुरुषों को जिन भागवतादि परवर्त्ती ग्रन्थकारों ने ईश्वर का अवतार तो सिद्ध किया, किन्तु वे अल्पज्ञ होने से यह भूल गये कि ईश्वर तो सर्वज्ञ है, उसके अवतार भी सर्वज्ञ ही होने चाहिएँ फिर उनको गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा प्राप्त कराने की क्या आवश्यकता है? श्रीमद्

भागवत पुराण में श्रीकृष्ण को अवतार तो माना है, साथ ही उनकी शिक्षा दीक्षा की बातें भी भूल से लिख गये। श्रीकृष्ण और बलराम जैसे ही विद्याप्राप्ति की अवस्था में पहुंचे, उस समय उनका यज्ञोपवीतसंस्कार यदुकुल के पुरोहित द्वारा कराया गया। भागवत्कार लिखते हैं—

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥

अर्थात् यदुवंश के कुल-पुरोहित आचार्य गर्ग ने श्रीकृष्ण और बलराम को गायत्री मन्त्र की शिक्षा देकर यज्ञोपवीत संस्कार कराया और उन्हें द्विजत्व की दीक्षा भी दी।

अथ गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥

उपनयन-संस्कार कराने के पश्चात् श्रीकृष्ण और बलराम गुरुकुल में शिक्षा-प्राप्ति की इच्छा करते हुए काश्य-गोत्री, अवन्तीपुर=उज्जैन में रहने वाले गुरु सान्दीपनि मुनि के पास गये।

यथोपसादयन्तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥
ततो द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदादिविज्ञानं साङ्गोपनिषदा गुरुः ॥ ३३ ॥
सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथांस्तथा ।
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च
षड्विधाम् ॥ ३४ ॥

सर्वनरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्त्तकौ ।
सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृतुर्गुरोः ॥ ३५ ॥
(भागवत स्कन्द १० अ० ४५)

श्रीकृष्ण और बलराम गुरु के आश्रम में बहुत ही संयम पूर्वक अपनी समस्त दिनचर्या को नियमित रखते हुए, बड़ी श्रद्धा से गुरु की सेवा करते हुए, और गुरु के पास किस शिष्टाचार से रहना चाहिये, उसका विशेष ध्यान रखते हुए गुरु जी से विद्या पढ़ने लगे। गुरु जी उनके सद्व्यवहार से बहुत प्रसन्न रहते थे। और सन्तुष्ट गुरु जी ने उन योग्य शिष्यों को छः अंगों तथा उपनिषदों सहित वेदों की शिक्षा दी। साथ ही राजकुमारों के योग्य न्यायविद्या, धनुर्वेद,धर्मशास्त्र, मीमांसादि शास्त्र, छः

प्रकार की राजनीति के शास्त्र, इत्यादि विद्याओं का भी विधिवत् अध्ययन कराया। ये दोनों भाई इतने कुशाग्रबुद्धि थे, कि गुरु जी से एक बार अध्ययन करके ही विद्या को समझ लेते थे।

श्रीकृष्ण को गुरुकुलीय शिक्षा के विषय में छान्दोग्योपनिषद् में भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। इसमें देवकी पुत्र श्रीकृष्ण के गुरु का नाम आंगिरस घोर है। ऐसा सम्भव है कि यहां मुख्य नाम न लेकर गोत्रनाम ही दिया हो। किन्तु यह तो निश्चित है कि श्रीकृष्ण को शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल में हुई थी। महाभारत के सभापर्व में श्रीकृष्ण की शिक्षादि के विषय में पितामह भीष्म जी ने कहा है—वेद वेदांगविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा। नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥

अर्थात् संसार में श्रीकृष्ण से अधिक वेद-वेदांग-विज्ञानवेत्ता तथा बलवान् इस समय कोई नहीं है। यह विशिष्ट ज्ञान और बल गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन का ही फल था।

(२) श्रीकृष्ण और श्रीराम दोनों ही ईश्वर के उपासक थे—

उपासना या भक्ति अपने से विशिष्ट, महान्, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ आनन्दस्वरूपादि गुणों वाले ईश्वर की की जाती है। यदि श्रीकृष्ण अथवा श्रीराम ईश्वर के अवतार होते तो वे स्वयं अपनी उपासना या भक्ति क्यों करते? इससे स्पष्ट है कि वे ईश्वरावतार नहीं थे, प्रत्युत महान् पुरुष ही थे आर्यजाति के इतिहास गगन में श्रीकृष्ण और श्रीराम दो ही ऐसे उज्ज्वल निष्कलंक सितारे हैं, जो अपने समय में अपने लोकोत्तर कार्यों से सर्व-मान्य एव श्रद्धास्पद रहे हैं। चाहे वे ईश्वरावतार रूप में हैं, अथवा महान् पुरुष के रूप में। इन दोनों ही महापुरुषों के गाथा काव्यों (रामायण एवं महाभारत) का अवगाहन करने से यह निर्भ्रान्त सिद्ध हो जाता है कि ये दोनों ही ईश्वरावतार नहीं थे, प्रत्युत अपने युग के निर्माता होने से महापुरुष थे। ये दोनों ही ईश्वर के अनन्य भक्त थे, देखिये उपर्युक्त ग्रन्थों की अन्तः साक्षी—

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत्॥

(रा० आरण्य० सर्ग ११)

अर्थात् श्रीराम ने लक्ष्मण भाई के साथ विधि-पूर्वक सायंकालीन सन्ध्या करके अगस्त मुनि के आश्रम में प्रवेश किया और मुनि को सादर

अभिवादन किया। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के सन्ध्या करने के विषय में देखिये—

> अवलोक्य ततः पश्चात् दध्यौ ब्रह्म सनातनम्।
> ततः उत्थाय दाशार्हः स्नातः प्राञ्जलिरच्युतः ॥
> जप्त्वा गुह्यं महाबाहुरग्नीनाश्रित्य तस्थिवान् ॥
>
> (म० शा० ५३० प्र०)

अर्थात् श्रीकृष्ण ने प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में प्रथम ईश्वर का ध्यान किया। तत्पश्चात् शौचादि दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर गायत्री का जप और अग्नि होत्र किया।

और आश्चर्य तो यह है कि श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार सिद्ध करने वाले भागवत पुराण (स्कन्द १० अ० ६६) में भी लिखा है—

> क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपं तं ब्रह्मवाग्यताम् ॥ २५ ॥
> ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ३० ॥

नारद जी ने देखा कि श्रीकृष्ण जी प्रकृति से भी सूक्ष्म परब्रह्म का ध्यान कर रहे थे।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन के अनुसार पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जी का चरित्र महाभारत में अत्युत्तम है। श्रीकृष्ण जी ने गुरुकुलीय शिक्षा के कारण अपना समस्त जीवन कमलवत् निर्लेप बनाया हुआ था। युद्धादि में रत होकर भी उसके फलों से बचे रहना कोई छोटी बात नहीं है। पाण्डव पक्ष से महाभारत के युद्ध के सूत्रधार श्रीकृष्ण ही थे उन्हीं की ऊहापोह का यह परिणाम हुआ कि पाण्डवों की विजय हुई। परन्तु भागवतादि पुराणों में भी श्रीकृष्ण के चरित्र को कलंकित ही किया गया है। शृंगार-रस के रसिकों ने श्रीकृष्ण को भी अपने जैसा ही बना लिया और उस महापुरुष के नाम पर रासलीलादि स्वांग रचाये गये। यदि महाभारत के श्रीकृष्ण के उत्तम चरित्र को ही जनता के समक्ष रखा जाये, तो विधर्मी भी श्रीकृष्ण की महिमा को जानकर आर्यजनता को धोखा देना भूल जायें। और कृष्णभक्तों को ईसा-भक्त न बना सकें।

वास्तविक कृष्ण महाभारत के या पुराणों के ?

—यशपाल आर्यबन्धु,
आर्य निवास, चन्द्र नगर, मुरादाबाद

अपने महापुरुषों के चरित्र को विकृत कर प्रस्तुत करने वाली संसार में यदि कोई अभागी जाती है तो वह आर्य जाति है। और आर्य जाति के जितने महापुरुष हैं, उनमें सर्वाधिक विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया यदि कोई चरित्र है तो वह श्रीकृष्ण का ही है। जिस श्रीकृष्ण का चरित्र महाभारत में अति उज्ज्वल, अति पावन एवं सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष के रूप में चित्रित किया गया है, उसी को इस अभागी जाति के तथाकथित हिन्दू भक्तों ने पुराणों में एवम् अन्य अनेकों ग्रंथों में और काव्यों में अति विकृत, अति घिनौने रूप में प्रस्तुत किया है। और विडम्बना यह है कि यह विकृत स्वरूप इतना प्रचार पा चुका है कि अब महाभारत के श्रीकृष्ण की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। फलतः अब लोग श्रीकृष्ण को क्या समझने लगे हैं ? बंकिम बाबू के शब्दों में—"यही **कि वे बचपन में चोर थे—दूध दही, मक्खन, चुराचुरा कर खाया करते थे, युवावस्था में व्यभिचारी थे, और उन्होंने बहुतेरी गोपियों के पातिव्रत्य धर्म को नष्ट किया, प्रौढ़ावस्था में वंचक और शठ थे—उन्होंने धोखा देकर द्रोणादि के प्राण लिए।**" बंकिम बाबू आगे पूछते हैं—"**कि क्या इसी का नाम भगवच्चरित्र है ?**" (कृष्णचरित्र पृष्ठ २)

और एक महापुरुष को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत न करके उसे अलौकिक रूप में प्रस्तुत करना यथार्थ चरित्र-चित्रण नहीं कहा जा सकता। डा० भवानीलाल भारतीय के शब्दों में—"**यही कृष्ण चरित्र की प्रथम विकृति है। उसे लौकिक धरातल से हटाकर अलौकिक पृष्ठभूमि पर खड़ा किया गया और उसके सहज मानवीय रूप को भुलाकर उसे अप्रा-**

कृतिक और वायवीय बना दिया गया। जब कृष्ण को ईश्वर मानकर उसके दिव्य अवतार की उपासना देश में प्रचलित हुई तो कृष्णोपासना के आधार पर अनेक सम्प्रदाय स्थापित हो गये।" (श्रीकृष्ण चरित्र पृष्ठ १०) डा० भवानीलाल भारतीय आगे लिखते हैं कि—"इन सम्प्रदायों के जन्म से पूर्व तक कृष्ण आदर्श चरित्रवान्, परम सात्विक आचार सम्पन्न और प्रतिभाशाली महापुरुष समझे जाते थे। परन्तु तांत्रिक साधना के प्रचार के कारण वैष्णव सम्प्रदायों में भी वासना मूलक शृंगार का मिश्रण होने लगा। महाभारत के कृष्ण जहां मर्यादापोषक, संयमी और सत्वगुण सम्पन्न हैं, वहां पुराणों, काव्य-ग्रन्थों एवं अन्य साम्प्रदायिक ग्रंथों में उनके जीवन को अत्यन्त विलासपूर्ण, स्थूल वासनायुक्त और रोमान्टिक बनाने का प्रयत्न किया गया है। भागवत और ब्रह्मवैवर्त जैसे पुराणों, जयदेव के गीत-गोविन्द जैसे काव्यों और गोपाल सहस्रनाम जैसे स्तोत्रों में सर्वत्र कृष्ण के परदारागामी स्वरूप का चित्रण किया गया है। "गोपालः कामिनीजारः चौरजारशिखामणिः" जैसी उक्तियां इन्हीं ग्रन्थों की हैं। भागवत में पर-दारागमन के संकेत स्पष्ट हैं, जिनके कारण राजा परीक्षित को कृष्ण के चरित्र के विषय में शंका होती है, परन्तु शुकदेव जी, समर्थ व्यक्ति की समर्थता की दुहाई देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का समावेश कराकर विकृति के इस पहलू को और भी बढ़ा दिया गया है। वहां राधा-कृष्ण के संभोग का जो कुत्सित वर्णन मिलता है, उसे देखकर लज्जा भी लज्जित होती है।

(श्रीकृष्ण चरित्र पृष्ठ १०-११)

आश्चर्य और दुःख है कि धर्मग्रंथ कही जाने वाली पुस्तकों का यह हाल है, तो अन्य पुस्तकों का क्या हाल हो सकता है? फिर विद्यापति और चण्डीदास सरीखे कवियों को खुलकर खेलने से कौन रोक सकता था? वस्तुतः भागवत आदि पुराणों ने श्रीकृष्ण के निर्दोष व्यक्तित्व पर जो मिथ्या लांच्छन लगाये हैं, वे उन ग्रन्थ-लेखकों की अपनी कुत्सित भावनाओं के ही द्योतक हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण जी का चरित्र ऐसा उज्ज्वल, ऐसा पावन है कि जिस पर कोई लांच्छन लगाया ही नहीं जा सकता। आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने उच्च स्वर में उद्घोष किया कि—"देखो श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा

काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मतवाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?

(स० प्र० एकादश समुल्लास)

महाभारत में गोपी प्रसंग की कहीं कोई चर्चा नहीं है। इस सम्बन्ध में पं० चमूपति जी लिखते हैं कि—"महाभारत में गोपी प्रेम की गन्ध भी नहीं। और तो और किसी प्रसंग में कृष्ण की रासलीला या गान का वर्णन नहीं। यहां तक कि महाभारतकार ने कृष्ण के हाथों से वंशी तक न छुवाने की कसम डाली है। महाभारत का कृष्ण चक्रधर है, गदाधर है, असिधर है, मुरलीधर नहीं" (योगेश्वर कृष्ण, पृष्ठ २६-२७) महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण एक पत्निव्रती थे जबकि पुराणों ने उनकी सोलह हजार रानियां बना डालीं। महाभारत के कृष्ण अत्यन्त संयमी थे जबकि पुराणों का कृष्ण ...?(कृष्ण जी के लिए वह शब्द प्रयोग करते हुए हृदय कांप उठता है।) आश्चर्य है कि जिसने इकलौते पुत्र की प्राप्ति के लिए १२ वर्ष का घोर तप तपा, उसे ही पुराणकारों ने कुब्जा आदि के साथ संग करते हुए दिखाया है। तब वास्तविक कृष्ण महाभारत का हो सकता है या पुराणों का—इसे विज्ञ पाठक स्वयं सोच सकते हैं। वैसे सम्पूर्ण महाभारत ही श्रीकृष्ण जी की गौरव गाथा है। यदि उसमें से कृष्ण को निकाल दें तो फिर महाभारत में शेष रह ही क्या जाता है ? महाभारत में उन्हें पूज्यतम, श्रेष्ठतम महामानव के रूप में वर्णित किया गया है। ऐसा उत्तम जिसके लिए बंकिम बाबू ने लिखा था कि—"सच में ऐसा सर्वगुणान्वित और सर्वपाप रहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है, न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में।"

महाभारत के अध्ययन से हमें कृष्ण जी के चरित्र में आर्य जीवन का सर्वांगीण विकास दिखाई देता है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें उन्हें सफलता न मिली हो। वे एक आदर्श विद्यार्थी हैं, एक आदर्श गृहस्थी हैं, एक आदर्श राजनीतिज्ञ हैं, एक आदर्श राजा हैं, एक आदर्श योद्धा हैं, एक आदर्श मित्र हैं, एक आदर्श कर्मयोगी हैं। वह कौन सा सद्गुण है जो महाभारत के कृष्ण में दृष्टिगोचर नहीं होता। विपरीत इसके

पुराणों के कृष्ण महापुरुष तो क्या सामान्य सदाचारी व्यक्ति भी नहीं कहला सकता। तो फिर आप स्वयं ही सोच सकते हैं कि वास्तविक कृष्ण कौन से हैं। सामान्यतः यह देखा गया है कि किसी के पूर्वजों में कोई अवगुण ऐव अथवा दोष हो, तो भी उनके अनुयायी उनके गुणों का ही बखान करते हैं, अवगुणों अथवा ऐबों का नहीं। किन्तु इस हिन्दू जाति को क्या कहें कि जो अपने महापुरुषों में कोई अवगुण न होने पर भी उन पर नाना अवगुण थोपने में अपनी कृतकार्यता समझती है। न जाने परमात्मा इस जाति को कब सुबुद्धि प्रदान करेगा ? हम उन सभी से जो अपने को हिन्दू और कृष्ण का अनुयायी मानते हैं बल पूर्वक कहना चाहते हैं कि अपने महापुरुषों को परिप्रेक्ष्य में देखने का यत्न करें। **वैसे भी आज भारत को मुरलीधर कृष्ण की नहीं, चक्रधर कृष्ण की आवश्यकता है।**

अन्त में हम एक निवेदन और भी करना चाहते हैं। वह यह—कि आप विचारें कि एक ओर तो वे आर्य लोग हैं कि जो महाभारत के आधार पर कृष्ण जी को एक मानव मानते हैं पर कैसा मानव ? एक आदर्श मानव जिस पर मानवता नाज कर सके, जिसमें मानवता कूट-कूट कर भरी हो, और दूसरी ओर समस्त हिन्दू सम्प्रदायवादी लोग, जो पुराणों के आधार पर श्रीकृष्ण को भगवान् अथवा ईश्वरत्व का दर्जा देते हैं और फिर उस पर मनमाने दोषारोपण से भी नहीं हिचकिचाते। इन दोनों में कौन सही है ? क्या ऐब को हुनर मानना ठीक है या फिर अवगुण को लीला मानना ठीक है ? और जिसमें कोई ऐब अथवा अवगुण हो ही नहीं तो उस पर मनमाने नाना दोष लगाना ठीक है ? क्या हिन्दू जाति महाकवि हरिऔध के निम्न उद्बोधन पर ध्यान देगी ?—"हम लोगों का एक संस्कार है, वह यह कि जिनको हम अवतार मानते हैं, उनका चरित्र जब कहीं दृष्टि-गोचर होता है तो हम उसकी प्रति पंक्ति में या न्यून से न्यून उसके प्रति पृष्ठ में ऐसे शब्द या वाक्य अवलोकन करना चाहते हैं, जिसमें उनके ब्रह्मत्व का निरूपण हो।...आधुनिक विचारों के लोगों को यह प्रिय नहीं है कि आप पंक्ति-पंक्ति में तो भगवान् श्रीकृष्ण को ब्रह्म लिखते चलें और चरित्र लिखने के समय 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः प्रभुः' के रंग में रंग-कर ऐसे कार्यों का कर्त्ता उन्हें बनावें कि जिनके करने में एक साधारण विचार के मनुष्य को भी घृणा होवे।" (प्रिय प्रवास की भूमिका) क्या पौराणिक बन्धु श्रीकृष्ण भक्तिधारा के इस भक्त कवि की इस यथार्थोक्ति पर विचार करेंगे ?

श्री कृष्ण का ही जन्मोत्सव क्यों

—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती
डी १४/१६ माडल टाउन, दिल्ली

महाभारत काल में भीष्म पितामह सभी के श्रद्धास्पद थे। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के कारण वह इतिहास में अमर हैं। युद्ध कौशल में वह अप्रतिम थे। शान्ति पर्व के अन्तर्गत दिया गया उनका उपदेश उनके बौद्धिक उत्कर्ष का साक्षी है। किन्तु फिर भी उनका जन्म दिन नहीं मनाया जाता। क्यों? उनका ब्रह्मचर्य व्रत परिस्थिति विशेष का परिणाम था। न वह स्वत: स्फूर्त्त था और न उसका कोई लक्ष्य या प्रयोजन था। एक कामुक पिता की वासना पूर्ति में सहायक होना ही उसका एक मात्र उद्देश्य था। युद्ध में वह अपराजेय थे। किन्तु वह लड़े तो किसके लिये? यह जानते हुए भी कि कौरव अन्यायकारी है, फिर भी भीष्म उन्हीं की ओर से लड़े—अन्याय की रक्षा के लिये। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो 'अर्थस्य पुरुषो दास:' कहकर अपनी विवशता का कारण बता चुप हो गये। इस दृष्टि से वह अहमदाबाद के पुलिस कमिश्नर से अच्छे नहीं थे। १९४८ में जब महात्मा गांधी की हत्या हुई तो 'संघ वालों ने मारा है' इस अफवाह के कारण संघ के प्रति जनता का आक्रोश उमड़ पड़ा। आर्य समाज अहमदाबाद के बाहर एक बोर्ड लगा था जिसपर 'आर्य वीर संघ" लिखा था। संघ शब्द देखते ही लोगों ने वहां आग लगा दी। सार्वदेशिक सभा के संयुक्त मन्त्री के नाते मैं वहां गया और वहां के पुलिस कमिश्नर से भेंट की। बातचीत के दौरान पुलिस कमिश्नर ने कहा—"आत्मा या अन्त: करण की बात हम नहीं जानते। उचित अनुचित पर विचार करना हमारा काम नहीं है। जिसकी नौकरी करते हैं उसका हुकुम बजाते हैं—नमक हलाल करते हैं। पुलिस कमिश्नर ने जो कुछ कहा वही तो भीष्म पितामह ने कहा था। अन्त समय में दिये गये उपदेश के सम्बन्ध में 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की उक्ति चरितार्थ होती है। भरी सभा में द्रोपदी का जो अपमान हुआ

उस दृश्य को जो व्यक्ति चुपचाप देखता रहा, उसके विषय में इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह घर का बड़ा बूढ़ा था, या उसमें ब्रह्मचर्य का तेज था, या उसको भुजाओं में बल था, या उसे धर्माधर्म या कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान था। ऐसे व्यक्ति का जन्मदिन कौन मनायेगा ?

उस समय के एक दूसरे महापुरुष थे महर्षि वेदव्यास। गीता के सामने सारा संसार नतमस्तक है। किन्तु वह तो महाभारत का अंशमात्र है। सम्पूर्ण महाभारत और वेदान्तदर्शन के रचयिता वेदव्यास की बुद्धि का कौन पार पा सकता है ? किन्तु उस बेचारे की सुनता कौन था ? 'ऊर्ध्वबाहुः विरौम्येष न हि कश्चित् श्रृणोति माम्' व्यास के इन शब्दों में कितनी बेवसी—कितनी वेदना है। व्यास ने जो कुछ कहा, बहुत अच्छा कहा किन्तु जो कुछ किया उस पर कौन गर्व कर सकता हैं ? तत्कालीन समाज द्वारा उपेक्षित ऐसे व्यक्ति का जन्मदिन आज कौन मनाने बैठेगा ?

युधिष्ठिर धर्मराज—धर्मपुत्र थे। जीवन में कभी झूठ नहीं बोला, वह एक बार परिस्थितिवश कुछ कह बैठा था। सो उसका भी उसे दण्ड मिला। भला इतना था कि मानापमान को भूलकर सदा समझौता करने को तैयार रहता था। ऐसे धर्मपुत्र में एक ही दोष था—जुआ खेलने के एक दोष ने उसे कहीं का नही छोड़ा। इसके कारण उसी को नहीं पूरे परिवार को वर्षों भटकते रहना पड़ा। जो व्यक्ति जुए में अपनी पत्नी तक को दाव पर लगा दे उस तथाकथित धर्मपुत्र का जन्मदिन कौन भला आदमी मनायेगा ?

ये सभी क्षत्रीय थे। उन बड़ों के बीच एक ब्राह्मण था— द्रोणाचार्य। समाज व्यवस्था में ब्राह्मण का सर्वोपरि स्थान है—किन्तु ब्राह्मोचित गुणों के कारण। विद्या सीखने के लिये विद्यार्थी गुरु के पास जाया करते थे, गुरुजन विद्यार्थियों के घर पर जाकर नहीं पढ़ाते थे। द्रोणाचार्य पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राजाश्रित होकर टयूटर के तौर पर शिष्यों के घर पर रहकर पढ़ाने का उपक्रम किया। आज कल के अध्यापकों की तरह छात्रों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार की प्रवृत्ति भी उनमें पाई जाती थी। एकलव्य के प्रति उनका व्यवहार सर्वविदित है। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने ब्राह्मणोचित धर्म का उल्लंघन तो किया ही, गुरु के गौरवपूर्ण पद को भी कलंकित किया। परिणामतः भीष्म की तरह वह भी सब प्रकार के अन्याय के प्रति उदासीन रहे। इतना ही नहीं, समय

आने पर अन्याय की रक्षा करने में प्रवृत्त हुए।

ऐसी विषम परिस्थिति में श्री कृष्ण के रूप में एक ऐसा व्यक्तित्व उभरकर आया जो **'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'** कृत-संकल्प था—जिसकी भुजाओं में बल था और मस्तिष्क में दूर तक सोचने का सामर्थ्य। जिसके माता पिता को उसके जन्म से पहले कारागार में डाल दिया गया हो वह जन्म से ही विद्रोही और क्रांतिकारी क्यों नहीं बनता? इसलिये श्री कृष्ण ने जहाँ भी पाप होते देखा-सुना वहीं उसका दमन करने दौड़ा गया। एक-एक करके कितने ही अत्याचारियों का संहार किया और अन्त में कुरुक्षेत्र के मैदान में 'सर्व वं पूर्ण स्वाहा' कर समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधकर शान्ति की स्थापना की। १८५७ में भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के सन्दर्भ में श्री कृष्ण के सामर्थ्य का स्मरण करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है—**"जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके [अंग्रेजों के] धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते."**

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने लिखा है—"मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुखदुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मा-त्माओं की चाहे वे अनाथ, और निर्बल क्यों न हों—उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ और महा बलवान भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण, सदा किया करें।" अर्थात् जहाँ तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और अन्यायका-रियों के बल को उन्नति सर्वथा किया करे।

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत 'मनुष्यता को इस कसौटी पर श्री कृष्ण पूरी तरह खरे उतरते हैं। वह जीवन भर न्याय की रक्षा के लिए अन्यायकारियों से संघर्ष करते रहे। मनुष्य स्वाभाव से स्वार्थी है। जो उसके काम आता है वह उसे कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता है। श्री कृष्ण के समकालीन बड़े २ लोगों में सभी अपने लिये जिये और अपने लिये मरे। श्री कृष्ण औरों, धर्मात्माओं, दीन-दुःखियों, पीड़ितों—के लिये जिये और उन्हीं के लिये लड़ते २ मर गये। इसलिए समाज व राष्ट्र आज भी उन्हें स्मरण करते हुए प्रति वर्ष उनका जन्मोत्सव मनाता है।

आजकल राजनेताओं का दो प्रकार का जीवन होता है—सार्व-जनिक जीवन (Public life) (Private Life) सार्वजनिक जीवन में आदर्श

प्रतीत होनेवालों नेताओं के भीतर झाँककर देखने पर उनसे घृणा हो जाती है। श्रीकृष्ण के व्यक्तिगत जीवन के विषय में महर्षि ने लिखा है—

'श्री कृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है।' उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।

जिस दयानन्द के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उन्होंने किसी को लाँछित किये बिना नहीं छोड़ा, उनका श्री कृष्ण को इतना बढ़िया प्रमाण पत्र देना अपने आप में कितना महत्वपूर्ण है। महाभारत काल में ऐसा महान् व्यक्ति अन्य कोई नहीं हुआ। इसलिए श्री कृष्ण का ही जन्मोत्सव मनाया जाता है, अन्य किसी का नहीं।

योगेश्वर कृष्ण का नीति नैपुण्य

—शिवकुमार शास्त्री, काव्य-व्याकरणतीर्थ
एम० ८७, साकेत, नई दिल्ली-१७

न केवल भारत के अपितु समस्त विश्व के इतिहास में कृष्ण जैसा अद्भुत महापुरुष दूसरा नहीं हुआ। स्व० पं० भगवतदत्त जी ने भारतवर्ष के वृहद् इतिहास में कृष्ण के कार्यों का विवेचन करते हुए ठीक ही लिखा है कि गत पांच हजार वर्षों में कृष्ण को शतांश योग्यता वाला भी कोई व्यक्ति भारत में नहीं हुआ।

इस महापुरुष को १२५ वर्ष का जीवन प्राप्त हुआ। इनके पिता वसुदेव इनके बाद तक भी जीवित रहे। जिस दिन कलियुग प्रारम्भ हुआ उसी दिन इनकी जीवन लीला समाप्त हुई।

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्नः कलियुगः······वायु० ९९/४२८

इस महापुरुष को वयस्क होते ही उस समय की नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना पड़ा। उस समय का भारत एक बीहड़ जंगल के समान था। समस्त आर्यमर्यादाएं नष्टप्राय थीं। जीवन भर घोर परिश्रम के बाद युधिष्ठिर के राज्य के ३६ वर्षों में ही वे कुछ निश्चिन्त हो कर रहे। पांडवों की सफलता और उस समय के भारत को व्यवस्थित करने का समस्त श्रेय उचित रूप में इसी महापुरुष को दिया जा सकता है। पद पद पर पांडव का प्रथ प्रदर्शन— ये न करते तो पांडव तो कहीं भी उलझकर असफल हो जाते। कृष्ण न सम्भालते तो गांडीव के धिक्कारने पर अर्जुन ने ही तलवार से युधिष्ठिर का सिर काट दिया होता। अनेक अवसरों पर धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य के भंवरों को चीरकर नाव को किनारे पर लगाना उसी मेधावी कर्णधार का काम था। इस समय भी कई बार महाभारत पढ़ने पर कृष्ण का आचरण पाठक को उनके सत्य का पक्षपाती मानने में ठिठका देता है—यथा एक बार यह घोषणा करने पर कि महा-

भारत के युद्ध में मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा, किन्तु भीष्म के तीसरे और नवें दिन के युद्ध में भीषण नरसंहार देखकर तथा भीष्म की तुलना में अर्जुन का पलड़ा हलका देखकर कृष्ण आग बबूला हो गये और शस्त्र हाथ में लेकर भीष्म को मारने के लिए रथ से कूद पड़े। अर्जुन और युधिष्ठिर ने बहुत अनुनय विनय करके और यह कहके कि आपके अपने वचन के विपरीत आचरण करने पर न केवल बदनामी होगी अपितु इसका युद्ध पर दूरगामी प्रतिकूल प्रभाव होगा। साथ ही अर्जुन ने यह आश्वासन दिया कि मैं अब तक कुछ ढीला लड़ रहा था, अब पूरी शक्ति से युद्ध करके पितामह को पराजित करके रहूंगा—तब कहीं कृष्ण वापस हुए और रथ संचालन को सम्भाला।

ऐसे स्थलों पर कृष्ण के सत्यपक्ष का यही समाधान है कि धर्म की तात्कालिक दुहाई देकर उस आचरण से यदि परिणाम में धर्म का ह्रास और अधर्म का वर्चस्व बढ़ता है तो उस सत्य और धर्म के नाम की उपेक्षा करके हमें परिणाम को ध्यान में रखना चाहिए। ऐसे अवसरों पर कृष्ण की नीति का यही समाधान है जो उन्होंने जरासन्ध वध से लेकर दुर्योधन के ऊरुभंग तक अपनायी। यही धर्मपक्ष है। इसी कारण सत्य के परम पक्षपाती और कठोर आलोचक ऋषि दयानन्द जी ने कृष्ण की नीति का न केवल अनुमोदन किया अपितु वह प्रशंसापत्र दिया—जिसे कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा कोई उनसे पा नहीं सका। सत्यार्थ-प्रकाश के ११वें समुल्लास में ऋषि कृष्ण के विषय में लिखते हैं—

"देखो, श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुणकर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।" ऋषि इसी समुल्लास में द्वारिका के रण छोड़ की कहानी की आलोचना करते हुए कृष्ण की वीरता की निम्न शब्दों में प्रशंसा करते हैं—"जब संवत् १६१४ (सन् १८५७) के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर की मूर्तियाँ अंग्रेजों ने उड़ा दी थी, तब मूर्ति कहाँ गयी थीं? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टाँग भी न तोड़ सकी। **जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता, तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।"**

इस भूमिका के पश्चात् अब हम कृष्ण के नीति-नैपुण्य लेख की सीमा को देखते हुए दिग्दर्शन कराते हैं—

कृष्ण पांडवों के अनुरोध पर सन्धि का सन्देश लेकर कौरवों के पास गये। दुर्योधन और उसकी चौकड़ी ने कृष्ण को फुसलाने के लिए उनके स्वागत और मनबहलाव की बड़ी तैयारी कर रखी थी। किन्तु कृष्ण ने उस सब की ओर दृष्टिपात तक नहीं किया और सभा में पहुंच गये। सबसे यथायोग्य अभिवादनादि के होने पर दुर्योधन ने भोजन की प्रार्थना की तो कृष्ण ने तपाक से उत्तर दिया। भोजन तम्हारे यहाँ स्वीकार नहीं है। क्योंकि भोजन करने की दो ही परिस्थितियाँ होती हैं तीसरी नहीं।

संप्रीति-भोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।
न त्वं सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम् ।।

भोजन या तो प्रेम में किया जाता है अथवा संकट के समय जब रोटी का कोई सहारा न हो और भूख ने पेट में आग जला रखी हो तो उस आपत्ति में मानापमान का बिना ध्यान किये भोजन स्वीकार कर लिया जाता है। तो प्रेम तो तुम रखते नहीं और ऐसा संकट का सताया मैं भी हूं नहीं कि अपमान का भोजन करूं। यह कहकर विदुर के घर गये। वहाँ अपनी बुआ कुन्ती से भी बातें कीं और भोजन विश्राम भी किया।

दूसरे दिन सभा में बहुत युक्तियुक्त भाषण किया। सभा के सभ्यों को भी उनके कर्तव्य का बोध कराया और सम्पूर्ण सम्भाव्य परिणामों का दिग्दर्शन कराते हुए भाषण का उपसंहार किया। सभा के वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध, धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी सभी ने कृष्ण के विचारों का अनुमोदन करते हुए पांडवों को उनका न्याय्य भाग देने के लिए दुर्योधन को कहा। किन्तु दुर्योधन ने किसी की एक नहीं सुनी और एक बार तो कृष्ण को गिरफ्तार करने के मनसूबे बनाने लगा। किन्तु सात्यकी तथा दूसरे सभ्यों की भर्त्सना पर वह रुक गया।

कृष्ण सभा से उठे और रथ पर बैठते हुए कर्ण को अनुरोध पूर्वक अपने रथ पर बैठा लिया और अब देखिये कृष्ण को नीति के पैंतरे—

कृष्ण जो कर्ण से कहने लगे—

उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया ।।

कर्ण तुमने वेदविद् विद्वानों का सत्संग किया है और बड़े श्रद्धा-भाव से वेद के तत्त्वों को उनसे जाना है।

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान् ।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ।।

कर्ण तुम वेद के सनातन रहस्यों को जानते हो, तुम धर्म शास्त्रों के सूक्ष्म तत्वों को जानने में निपुण हो। कुमारी का पुत्र उस कन्या से विवाहित पति का पुत्र ही माना जाता है, यह शास्त्रीय मर्यादा है। अतः कर्ण धर्मानुसार तुम पाण्डु के पुत्र हो। इसलिए शास्त्रीय व्यवस्थानुसार इस राज्य के राजा तुम बनोगे। तुम्हारे पितृपक्ष में पार्थ लोग होंगे और मातृपक्ष में हम वृष्णि लोग होंगे। आज तुम मेरे साथ चलो तो सबको यह विदित हो जावे कि तुम युधिष्ठिर के बड़े भाई हो। पाँचों पाण्डव तुम्हारे चरण छूएंगे। द्रौपदी के पांचों बेटे और अभिमन्यु तथा अन्य समागत अन्धक वृष्णि लोग सब तुम्हारे चरणों में नतमस्तक होंगे। सोने के घड़ों में औषधयुक्त भरे हुए पानी से राजकन्याएं तुम्हारा अभिषेक करेंगी। द्रौपदी भी तुम्हारे सत्कार के लिए उपस्थित होगी। धौम्य मुनि के पौरोहित्य में यज्ञ होगा और मेरे साथ सब पाण्डव और राजा लोग तुम्हें पृथिवीपति के रूप में अभिषिक्त करें। युधिष्ठिर तुम्हारा युवराज होगा। युधिष्ठिर फिर तुम्हारे रथ पर श्वेत पंखा लेकर हवा करेगा। महाबली भीम तुम्हारे सर पर श्वेत छत्र सम्भालेगा। सैकड़ों घुंघरुओं से गूंजते हुए और सिंह चर्म से ढके हुए सफेद घोड़ों वाले रथ को अर्जुन चलाएगा। नकुल सहदेव, अभिमन्यु, अन्धक, वृष्णि, दाशार्ह और दाशार्ण और मैं सब राजा लोग तुम्हारी सेवा में रहेंगे सब भाईयों के साथ राज्य उपभोग का आनन्द लो। तुम्हारा पांडवों के साथ भाईचारे का स्नेहपूर्ण सम्बन्ध आज स्थापित हो। यह श्रीकृष्ण की सूझबूझ थी। उन्होंने सोचा कि मेरे हस्तिनापुर आने का कुछ तो फल होना चाहिए।

किन्तु कर्ण भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। उसने विनयपूर्वक उत्तर दिया मैं यह जानता हूं कि मुझे जन्म कुन्ती ने दिया है।

सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यनयद् गृहान् ।
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ।।

मुझे देखकर अधिरथ सूत उठाकर अपने घर ले आया और स्नेह से अपनी पत्नी राधा को दे दिया।

मत् स्नेहाच्च राधायां सद्यः क्षीरमवातरत् ।
सा मे मूत्र-पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ।।

मेरे स्नेह से राधा के स्तनों में दूध उतर आया, उसी ने मेरे मल मूत्र की शुद्धि की।

तस्याः पिण्ड-व्यपनयं कुर्यादस्मद्‌विधः कथम्।
धर्मविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः।।

तो मेरे जैसा धर्मशास्त्रों का ज्ञाता उनके उपकारों की अनदेखी कैसे कर सकता है? इसके अतिरिक्त—

धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधन-समाश्रयात्।
मया त्रयोदश-समा भुक्तं राज्यमकण्टकम्।।

दुर्योधन के सहारे मैंने कौरव परिवार में १३ वर्ष तक निष्कंटक राज्य भोगा है। इसलिए हे कृष्ण मैं किसी भी भय अथवा प्रलोभन में अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकता।

इतने पर भी कृष्ण निराश होकर नहीं बैठे। कृष्ण की इस बात से प्रेरणा लेकर कुन्ती कर्ण के पास गयी और उसने भी अपना पुत्र बताकर उसे पांडवों का साथ देने को कहा। इस पर कर्ण ने एक वचन दिया कि माता—

न जातु ते विनङ्‌क्ष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनी।
निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि।।

तू पांच पुत्रों में वाली प्रसिद्ध है, तेरे पांच पुत्र बने रहेंगे। अन्तर केवल इतना आयेगा कि या तो अर्जुन का स्थान कर्ण ले लेगा अथवा मेरे मरने पर वे पांच के पांच रहेंगे ही।

कृष्ण के मन में फिर भी कर्ण की वीरता के कारण चिन्ता थी। युद्ध के प्रारम्भ के समय युधिष्ठिर और चारों भाई रथों से उतर कर, सब शस्त्र छोड़कर भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य का प्रणाम करने और आशीर्वाद लेने चले तो कृष्ण फिर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्ण के पास जा पहुंचे और कहने लगे—कर्ण सुना है भीष्म से मतभेद के कारण भीष्म के जीवित रहने तक तुम शस्त्र नहीं उठाओगे। तो तब तक के लिए तुम हमारे पक्ष में आ जाओ। जब भीष्म न रहें तो फिर दुर्योधन के साथ चले जाना। अस्तु।

आगे चलकर युद्ध में जब अर्जुन और कर्ण का संग्राम हुआ और कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फंस गया तो कर्ण ने विनयपूर्वक धर्मयुद्ध की मर्यादा के अनुसार अर्जुन से कहा कि जब तक मैं अपने रथ का चक्र

न निकाल लूं तब तक तुम मेरे ऊपर प्रहार मत करना। यह कहकर वह पहिया निकालने में लग गया। अर्जुन भी कर्ण को बात सुनकर थोड़ी देर ठिठक गया। इसी अवसर पर कृष्ण बोले—

तमब्रवीद् वासुदेवो रथस्थो राधेय,
दिष्टया स्मरसीह धर्मम्।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना,
निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्॥

रथ पर बैठे कृष्ण ने कर्ण को कहा कर्ण! आश्चर्य है तुम भी धर्म की रट लगा रहे हो। प्रायः नीच विपत्ति में फंसने पर अपने भाग्य को कोसते हैं, अपने पाप कर्मों को नहीं सोचते।

जब एकवस्त्रा द्रोपदी को दुर्योधन ने दुःशासन शकुनि और सौबल से बलपूर्वक भगवाया था। "न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः" तब कर्ण तुम्हें धर्म याद नहीं आया था। जब द्यूतकौशल से अपरिचित युधिष्ठिर को जुआरी शकुनि ने जीता था "क्व ते धर्मस्तदा गतः।" तब तुम्हारा धर्म कहां चला गया था? बनवास के १३ वर्ष बीतने पर भी पाण्डवों को उनका भाग नहीं लौटाया। "क्व ते धर्मस्तदागतः।" तब तुम्हारा धर्म कहां गया था? भीमसेन को जब सांपों से डसवाया और उसे विषाक्त भोजन दिया "तब तुम्हारा धर्म कहां था।" जब सोते हुए पांडवों को लाक्षागृह में आग लगाकर जलाना चाहा तब तुम्हारा धर्म कहां गया था? जब दुःशासन के पंजों में जकड़ी हुई द्रोपदी से तुम मजाक कर रहे थे, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था। तुमने द्रोपदी को कहा पांडव तो मरकर नरक में गये अब और किसी को पति चुन ले "तब तुम्हारा धर्म कहां गया था।" जब राज्य के प्रलोभन से पांडवों को दुबारा जुए के लिए बुला रहे थे, "तब तेरा धर्म कहां गया था।" जब बालक अभिमन्यु को ६ महारथ मिलकर मार रहे थे, "तब तुम्हारा धर्म कहां गया था।"

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि,
किं सर्वथा तालु-विशोषणेन।
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत,
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि॥

यदि यह धर्म तुम्हें इन अवसरों पर याद नहीं आया तो अब गला फाड़ने से क्या लाभ? आज तुम धर्म की कितनी दुहाई दे लो किन्तु तुम जीवित नहीं बच सकते।

एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत ।
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ।।

जब कृष्ण ने कर्ण को इस प्रकार खरी-खरी सुनाई तो लज्जा से सिर झुका लिया और कोई उत्तर नहीं दिया ।

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम् ।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ।।
(महा० कर्णपर्व० ९१ वां अ०)

तब कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि दिव्यास्त्र से इसके टुकड़े करके इसे नीचे गिरा दे ।

इसी प्रकार कृष्ण ने अपने नीति नैपुण्य से जरासन्ध के दुर्ग में पीत वस्त्रधारी स्नातक के वेश बनाकर भीम और अर्जुन के साथ प्रवेश किया और अर्जुन भीम को मौन धारण कराके जरासन्ध को कहलवाया कि आधी रात के पश्चात् ये हमारे स्नातक मौन खोलते हैं—तभी मिलें । जब जरासन्ध आया तो कुछ उत्तर प्रत्युत्तर के पश्चात् भीम से उसकी कुश्ती करा दी । कुश्ती में भी जब दोनों थक गये तो भीम को कृष्ण ने कहा कि—

"क्लान्तः शत्रुर्न कौन्तेय लभ्यः पीडयितुं रणे ।
पीडयमानोहि कात्स्न्र्येन जह्याज्जीवितमात्मनः"

थके हुए शत्रु को युद्ध में अधिक पीड़ित नहीं करना चाहिए । क्योंकि उसे और दबाया जायेगा तो वह मर जायेगा । इस वाक्य की शब्दार्थ विपरीत यह ध्वनि थी कि हिम्मत करके दो रगड़ और लगा दे तो इसका कामतमाम हो जाएगा । भीम सम्हला और जरासन्ध के प्राण पखेरू उड़ गये । इसी प्रकार का नीति चातुर्य भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, दुर्योधन आदि सभी को गिराने में कृष्ण ने बरता । कृष्ण की नीति का निचोड़ यह है कि—

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य—
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः,
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ।।

कपटी के साथ कपट से बरतो और सरलों के साथ सरलता से चलो ।

श्री कृष्ण की रणनीति

—राजवीर शास्त्री

[१] 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति

श्री कृष्ण राजनीति के कुशल खिलाड़ी थे। वे देश, काल, परिस्थिति को देखकर राजनीति का प्रयोग करते थे। महाभारत युद्ध में कौरवों के सेना के बड़े-बड़े महारथी जब मर गये, ग्यारह अक्षौहिणी सेना भी छिन्न-भिन्न हो गई, और कौरव पक्ष में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा को छोड़कर दुर्योधन ही शेष रह गया। तब दुर्योधन पैदल ही एक बड़े द्वैपायन नामक सरोवर में जा छिपा। यद्यपि उस समय अश्वत्थामा ने दुर्योधन को बहुत आश्वासन भी दिया था कि हमारे रहते हुए तुम्हें युद्ध से पलायन नहीं करना चाहिये। किन्तु दुर्योधन इतना हताश एवं भयभीत हो गया था, कि उसका धैर्य स्थिर नहीं रह सका। श्री कृष्ण तथा पाण्डवों ने व्याधों गुप्तचरों के द्वारा दुर्योधन का पता लगाया, और खोज करते-करते उस सरोवर पर पहुंच गये। उस समय श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा[1]—हे युधिष्ठिर! यह दुर्योधन माया, छल कपट की विद्या में अतीव निपुण है, इसका वध माया से ही करना चाहिये। क्योंकि सच्ची नीति यही है कि मायावी का वध माया से ही करना चाहिये।

तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर वाग्बाणों से दुर्योधन की भर्त्सना करते हुए बहुत कुछ कहा—हे दुर्योधन! तू समस्त क्षत्रियों और अपने कुल का विनाश करके कैसे जल में छिप गया है। शूरवीर तो युद्ध क्षेत्र से कभी भी पलायन नहीं करते, तूने यह कायर अनार्यों का मार्ग क्यों अपनाया है। वह तेरा स्वाभिमान कहाँ चला गया, जिसके नशे में तू सूई के अग्रभाग के बराबर भूमि भी देने को तैयार नहीं था। युधिष्ठिर की फट-

---

१. मायाविनाइमां मायां मायया जहि भारत।
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद्युधिष्ठिरः॥
(महा० शल्य० ३१ अ०)

कार सुनकर दुर्योधन का स्वाभिमान उद्बुद्ध हुआ और वह तालाब से बाहर आकर कहने लगा—हे युधिष्ठिर ! मुझे पाण्डवों में से किसी से भी भय नहीं है। मैं साधु पुरुषों की धर्म की नीति का अनुसरण कर युद्ध करना चाहता हूं। धर्मराज युधिष्ठिर उसकी बातों में आकर दुर्योधन को यह वचन दे बैठे—यह सौभाग्य की बात है कि तुम[1] शूरवीर हो तुम्हारी यह इच्छा ठीक ही है कि हमारे में से एक-एक के साथ युद्ध करू। अतः हे वीर ! मैं तुम्हें यह वर देता हूं कि तुम हम में से किसी एक का भी वध कर दोगे तो सारा राज्य तुम्हारा ही होगा। और मारे गये तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे।

हे दुर्योधन। तू कवच एवं शस्त्रादि धारण करके पाँचों पांडवों में से जिसके साथ युद्ध करना चाहो, उस एक का ही वध कर देने पर तुम राज्य के स्वामी बन जाओगे।[2]

श्री कृष्ण जी को जब युधिष्ठिर के वरदान का पता लगा, तो वे बहुत दुःखी हुए और युधिष्ठिर को धमकाते हुए कहते हैं—हे युधिष्ठिर ! तुमने यह क्या कर दिया। सारा बना बनाया खेल ही बिगाड़ दिया। यदि दुर्योधन ने तुम्हें अथवा नकुल आदि में युद्ध के लिए वरण कर लिया तो क्या स्थिति होगी। तुम दुर्योधन के पौरुष तथा राजनीति को नहीं जानते हो। तुमने फिर यह जुआ खेल लिया, पहले जुए से भी यह अतिशय भयंकर है। यह दुर्योधन गदा युद्ध में बहुत दक्ष है, इसका मुकाबला तुम्हारे में से कोई नहीं कर सकता। साक्षात् इन्द्र भी गदा युद्ध में इसे पराजित नहीं कर सकता। इसी बीच में भीमसेन कहने लगे—हे मधुसूदन ! तुम किसी प्रकार का विषाद मत करो, मैं आज इस पापी का वध करके समस्त वैरों से छुटकारा पाऊँगा। भीमसेन के वचनों को सुनकर दुर्योधन मौन नहीं रह सका और वह युद्धार्थ सन्नद्ध होकर भीमसेन से युद्ध करने लगा। दोनों के भयंकर युद्ध को श्री कृष्ण ने ध्यान से देखा

---

१. स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्।
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥
(महा० शल्य० ३२ अ०)

२. पंचानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि।
तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥
(महा० शल्य० ३२ वां अध्याय)

और भली भाँति परखकर गदा युद्ध में दक्ष श्री कृष्ण अर्जुन से कहने लगे हे अर्जुन[1]! यद्यपि भीमसेन अधिक बलवान है, किन्तु दुर्योधन भीम से गदा युद्ध में अधिक कुशल है। भीम धर्म पूर्वक युद्ध करता रहा तो दुर्योधन को कदापि जीत नही सकेगा। अतः जुए के समय दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा का पालन करे और मायावी दुर्योधन को माया से ही नष्ट करे। ऐसा संकेत भीम को देकर दुर्योधन को मरवाया। इस प्रकार समयानुकूल प्रतिज्ञा का स्मरण कराना, और युद्ध के नियमों का भी उल्लंघन करके मायावी शत्रु का नाश करने की नीति में श्री कृष्ण अतीव निपुण थे।

(२) मित्र की रक्षा में नीति-विरुद्ध-आचरण भी ठीक है :—

भीमसेन के द्वारा युद्ध नियमों का उल्लंघन करके दुर्योधन को मारा गया देखकर गदा युद्ध महारथी बलराम को बहुत क्रोध आया और भीम को धिक्कारते हुए कहा—इस धर्म युद्ध में नाभि से नीचे जो भीमसेन ने प्रहार किया है, वह धिक्कारने योग्य कर्म है। क्योंकि धर्म नीति के अनुसार नाभि से नीचे प्रहार नहीं करना चाहिये। बलराम को यह धर्म-विरुद्ध आचरण सहन नहीं हुआ वे अपना शस्त्र हल उठाकर भीमसेन

१· भीमसेनस्तु धर्मेण युद्धयमानो न जेष्यति।
अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम् ॥
(महा० शल्य० ५८ वां अध्याय)
सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पालयत्वरिकर्षणः।
मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु ॥
(महा० शल्य० ५८ वां अध्याय)
अहो धिक् यदधो नाभेः प्रहृतं धर्मं विग्रहे।
अधो नाभ्यां न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।
ततो लाङ्गुलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् बली।
तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद् बली।
उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा ॥
विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः ॥
(महा० शल्य० ६० वां अध्याय)

को मारने के लिये दौड़े। इस समय यदि श्री कृष्ण नीति से काम नहीं लेते तो बड़ा अनर्थ हो जाता। श्री कृष्ण ने तुरत भागकर अपनी भुजाओं से बलराम को पकड़कर रोका और नीति का उपदेश कर शान्त किया।

श्री कृष्ण ने बलराम को शान्त करते हुए कहा--भय्या बलराम! अपनी उन्नति छः प्रकार से होती है (१) अपनी उन्नति, (२) मित्र की उन्नति और (३) मित्र के मित्र की उन्नति। इसी प्रकार इसके विपरीत शत्रु पक्ष में शत्रु की हानि, शत्रु के मित्र की हानि तथा शत्रु के मित्र के मित्र की हानि। अपने मित्रों की हानि के निवारण के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिए। देखो! ये पाण्डव धर्म का आश्रय करने वाले हैं और हमारे सहज मित्र हैं। बुआ पुत्र होने से हमारे सम्बन्धी भी हैं। शत्रु ने इनके साथ सदा ही छलकपट करके इनकी हानि की है। भीम ने दुर्योधन की जांघ तोड़ने की पहले प्रतिज्ञा की थी, क्षत्रिय को अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना ही चाहिये। भैय्या बलराम! आप तो परंतप शत्रुओं को सदा संताप देने में प्रसिद्ध हो। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके शत्रु को मारा है, उसमें भीम का कोई दोष नहीं है, अतः आप शान्त ही रहें। इन मित्र तथा सम्बन्धी पाण्डवों की उन्नति से ही हमारी भी उन्नति है।

३. असत्य भी कभी धर्म हो जाता है

कर्ण के साथ युद्ध करते हुए वीर अर्जुन को युधिष्ठिर नहीं दिखाई दिये, तब अर्जुन और श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के पास गये। युधिष्ठिर ने उनको देखकर यह समझ लिया कि ये कर्ण को मार कर ही यहां आये हैं। किन्तु जब ऐसा पाया तो युधिष्ठिर को क्रोध आ गया और वे अर्जुन की भर्त्सना करने लगे कि तुम युद्ध से भागकर क्यों आये हो? तुमने आज माता कुन्ती के दूध को भी लजा दिया, क्या क्षत्रियों का यही धर्म होता है? इत्यादि भर्त्सना भरे शब्द कहते हुए युधिष्ठिर यह भी कह गये—

धिग् गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्यम्॥

अर्थात् गाण्डीव धनुष को धिक्कार है। अर्जुन भाई के मुख से ये शब्द सुनकर क्रोध से तिलमिला उठे। क्योंकि अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी जो मेरे गाण्डीव को धिक्कारेगा, उसको मैं जीवित नहीं छोड़ूंगा। इसलिये—

असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम्॥

अर्जुन ने भाई युधिष्ठिर को हत्या करने के लिये गुस्से में होकर तलवार उठा ली। ऐसी दशा में यदि श्रीकृष्ण अर्जुन को नहीं समझाते तो बना बनाया खेल ही बिगड़ जाता। श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन! तुम धर्म के सूक्ष्म रहस्य को नहीं जानते। तुमने कभी नासमझ अवस्था में यह प्रतिज्ञा की थी, आज उसके पालन करने की बात कह रहे हो। प्राणियों की हिंसा करना सबसे बड़ा अधर्म है। यदि किसी प्राणी की रक्षा झूठ बोलने से होती है तो वह झूठ बोलना भी धर्म होता है। और तुम अपने बड़े भाई को प्रतिज्ञावश होकर मारते हो, यह तो महापाप है, प्रतिज्ञा पालन नहीं। देखो सत्य व असत्य क्या है।—

भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत्॥

यदि असत्य बोलने का परिणाम मंगलकारक हो तो वह असत्य भी धर्म है और यदि सत्य बोलने का परिणाम अमंगलकारक हो तो वहां सत्य भी अधर्म है। इसलिये तुम्हारी सत्य प्रतिज्ञा से यदि अमंगल होता है तो यह प्रतिज्ञा-पालन भी अधर्म ही है।

४. श्रीकृष्ण शत्रु पक्ष के संकल्पों को जानकर समयोचित कार्य करने में दक्ष थे :—

कौरव पक्ष की समस्त सेनाओं व वीर पुरुषों का संहार होने पर पांचों पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने के लिये हस्तिनापुर गये। वहां जाकर उन्होंने देखा कि धृतराष्ट्र और समस्त स्त्रियों का करुण-क्रन्दन हो रहा था और धर्मराज युधिष्ठिर को घेर कर कहने लगीं कि तुम्हारी धर्मज्ञता और दयालुता कहां चली गई कि जो तुमने ताऊ, चाचा, भाई, गुरु, गुरुपुत्र, मित्र, पितामहादि का भी वध कर डाला। सभी सम्बन्धियों व मित्रों को मारकर जो राज्य तुम्हें मिलेगा, उसका क्या करोगे? धर्मराज भी उनके विलाप में ही कुछ समय तक डूबे रहे, तत्पश्चात् धृतराष्ट्र को जाकर प्रणाम किया। शोक से व्याकुल धृतराष्ट्र ने अप्रसन्न मन से ही युधिष्ठिर को गले लगाकर विलाप किया और दुर्योधन का वध करने वाले भीम के प्रति ईर्ष्या रखते हुए खोज करने लगे। भीम के प्रति धृतराष्ट्र की क्रोधाग्नि को बढ़ता हुआ देखकर श्रीकृष्ण उसकी मन की भावना को समझ गये और तुरन्त हाथ से भीम

---

१. महा० कर्ण पर्व० ६९ वां अ०।

को झटका देकर दूर किया और उसके स्थान पर भीम की लोहे की मूर्ति धृतराष्ट्र[1] के सामने कर दी। जिस बात को दूसरे व्यक्ति समझ भी नहीं पाये थे, श्रीकृष्ण ने उसका उत्तर देकर शीघ्र ही भीम की रक्षा की। धृतराष्ट्र ने उस मूर्त्ति को ही भीम समझकर इतने बल से दबाया कि मूर्ति के टुकड़े टुकड़े[2] हो गये। लोह-मूर्ति को बल से दबाने के कारण धृतराष्ट्र के मुख से खून और छाती में पीड़ा होने लगी और धृतराष्ट्र को तब संजय ने बहुत समझाया कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। क्रोध की अग्नि जब शान्त हो गई, तब धृतराष्ट्र हा भीम ! कहकर विलाप करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को समझाया—हे धृतराष्ट्र ![3] आप शोक न करें मैंने अबके अतिशय क्रोध को समझकर भीम की लोहे की प्रतिमा ही आपके आगे रखी थी और भीम को मृत्यु के मुख से पृथक् कर दिया था। मैंने आपके संकल्प तथा दश हजार हाथियों के तुल्य आपके बल को पहले ही जानकर ऐसा किया था। आपके पुत्र दुर्योधन ने ही एक लोहे की भीम की जो मूर्ति बनवाकर यहां रखी हुई थी, उसी के टुकड़े आपने किये हैं, भीम सुरक्षित है, अतः आप शोक बिल्कुल न करें।

५. महाबली कर्ण को मारने में सफलता का रहस्य

अर्जुन और कर्ण का भयंकर युद्ध हो रहा था अचानक कर्ण के रथ का बांया पहिया पृथिवी में धंस गया। कर्ण ने रथ से उतर कर अर्जुन से कहा हे अर्जुन ! दो घड़ी प्रतीक्षा[4] करो जब तक मैं अपना पहिया निकाल लेता हूं। हे अर्जुन ! तुम शूरवीर तथा युद्ध धर्मों को जानने वाले हो। मैं तुम्हारे से किसी प्रकार डरकर ये बातें नहीं कह रहा हूं, प्रत्युत युद्ध नियमों का पालन करने का आग्रह ही कर रहा हूं।

---

१. तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः ।
   भीममाक्षिप्त पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम् ।।
२. तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम् ।
   बभञ्ज बलवान् राजा मन्यमानो वृकोदरम् ।।
३. मा शुचो धृतराष्ट्र ! त्वं नैष भीम त्वया हतः ।
   आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया निष्पातिता विभो ।।
   (महा० स्त्रीपर्व० १२ अध्याय०)
४. भो भोः पार्थ ! महेष्वास मुहूर्त्तं परिपालय ।
   यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ।।

श्रीकृष्ण द्वारा कर्ण को फटकार—(१) हे कर्ण ! दुर्जन व्यक्ति विपत्ति में भाग्य की निन्दा करते हैं, अपने कुकर्मों को नहीं। अब तू युद्ध धर्मों की याद दिला रहा है उस समय तेरा धर्म कहां चला गया था कि जब भरी सभा में रजस्वला द्रौपदी का अपमान किया था ? (२) धर्मराज युधिष्ठिर को जब शकुनि ने छल से जुए में पराजित किया था, तब तेरा धर्म कहाँ था ! (३) बनवास का पूर्ण समय बीत जाने पर भी पाण्डवों का राज्य वापिस नहीं दिया, उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था ? (४) जब दुर्योधन ने तुम्हारी सलाह से भीम को विषमिश्रित अन्न खिलाया व सर्पो से डसवाया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? (५) जब वरणावत नगर में लाक्षा-भवन में सोते हुए पाण्डवों को तुमने जलाने का प्रयत्न किया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? (६) भरी सभा में नीच दुःशासन ने जब द्रौपदी का उपहास किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था ! (७) जब अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को सात महारथियों ने चारों तरफ से घेरकर मारा था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? यदि इन अवसरों पर धर्म की मर्यादा नहीं रही, तो आज धर्म की दुहाई क्यों ? श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर कर्ण[2] लज्जित होकर उत्तर नहीं दे सका और सिर नीचे झुका लिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सकेत किया कि हे अर्जुन ! अब अच्छा अवसर है, कर्ण को दिव्यास्त्रों से घायल कर मार गिराओ। पिछली करतूतों ने अर्जुन के घाव पर नमक का काम किया और वे और तेजी से बाणों की वर्षा करने लगे। प्रतिरोध में कर्ण ने भी ब्रह्मास्त्र का अर्जुन पर प्रयोग किया। अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र से उत्पन्न अग्नि को वरुणास्त्र चलाकर शमन कर दिया। और अर्जुन को किसी तीव्रतम बाण से घायल करके अपने रथ के चक्र को निकालने लगा। अर्जुन की उस समय दयनीय स्थिति थी, किन्तु यदि यह अवसर निकाल गया तो फिर कर्ण को पराजित नहीं किया जा सकेगा, श्रीकृष्ण ने यह विचार कर अर्जुन को फिर संकेत किया कि हे अर्जुन ![4] कर्ण जब तक

---

१. द० महा० कर्णपर्व० ६१ वें अ० के १-१२ श्लोक।

२. एवमुक्तस्तदा कर्णो···नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ॥
(महा० कर्ण० ६१ अ०)

३. ततोऽब्रवीद वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम्।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महालम् ॥

४. छिन्धस्व मूर्धानमरेः शरेण, न यावदारोहति
वै रथं सः ॥ (महा० कर्ण० ६१ वां अ०)

रथ पर नहीं चढ़ जाता है, तब तक तुम कर्ण के सिर को बाण से काट डालो, अन्यथा यह अवसर निकल जायेगा। अर्जुन ने अपने को संभालकर अञ्जलिका नामक भयंकर बाण से कर्ण को लक्ष्य बनाया और उसका सिर काट दिया।

इस प्रकार समयोचित परामर्शों तथा युद्धनीतियों के कारण ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्णादि का वध कराकर विजयी बनाया।

आर्य आदर्शों के अद्वितीय प्रतीक श्रीकृष्ण

—डा० भवानीलाल भारतीय
(अध्यक्ष दयानन्द पीठ, पंजाब वि. वि. चण्डीगढ़)

मनुष्य अपनी विविध प्रवृत्तियों को सर्वोच्च सोपान पर पहुंचाकर किस प्रकार एक साधारण व्यक्ति से महामानव एवं युगपुरुष के उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है, इसका श्रेष्ठ उदाहरण श्री कृष्ण का जीवन है। कारागार की विवशतापूर्ण परिस्थितियों में जन्म लेकर भी कोई मनुष्य संसार का महत्तम नेता बन सकता है, यह श्रीकृष्ण का चरित्र देखने से स्वतः ही विदित हो जाता है। बंकिम के अनुसार श्रीकृष्ण ने अपनी ज्ञानार्जनी, कार्यकारिणी तथा लोकरंजनी तीनों प्रकार की प्रवृत्तियों को विकास की चरम सीमा तक पहुंचा दिया था, तभी उनके लिए यह सम्भव हो सका कि वे अपने समय के महान् राजनीतिज्ञ और समाज-व्यवस्थापक के गौरवान्वित पद पर आसीन हो सके।

बाल्यावस्था से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण पर्यन्त श्रीकृष्ण उन्नति के पथ पर अग्रसर होते रहे। धर्म के अनुसार लोगों को स्व-कर्तव्य-पालन-हेतु प्रेरित करना ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य रहा। वे स्वयं धर्म में अनन्य निष्ठा रखने वाले और उसके वास्तविक रहस्य को जानकर उसका उपदेश देने वाले महान् धर्मोपदेष्टा थे। ऋषि दयानन्द ने तो यहाँ तक कह दिया था कि **'श्रीकृष्ण ने जन्म से लेकर मरणपर्यन्त कुछ भी बुरा काम नहीं किया।'** यह सब कुछ धर्म पालन के कारण ही सम्भव हुआ। इसीलिए महाभारतकार को लिखना पड़ा :—

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः

"जहां कृष्ण हैं जहाँ धर्म है वहां धर्म है वहां जय है।" संजय ने भी इसी प्रकार की बात "गीता" का उपसंहार करते हुए कही थी :—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।

"जहाँ योगेश्वर कृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन हैं वहीं श्री है, वहीं श्री है, वहीं विजय है। अधिक क्या कहें, वहीं ऐश्वर्य और ध्रुव नीति है।" ये उक्तियाँ श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार मानकर नहीं कही गई हैं। यदि ऐसा होता तो इनका कुछ भी मूल्य न होता । ये श्रीकृष्ण की सर्वोपरि मानवीय भावनाओं को ही प्रकाशित करती हैं, जिनके चरम परिष्कार के कारण श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य की कोटि से उठकर महापुरुषों की श्रेणी में आये, योगेश्वर और पुरुषोत्तम बने।

बाल्यकाल से ही देखिये। एक दृढ़-विचार वाले पुष्ट शरीर वाले और स्वस्थ मन तथा संकल्पनिष्ठ आत्मावाले ब्रह्मचारी में जो-जो विशेषताएं होनी चाहिए वे हमें श्रीकृष्ण में मिलती हैं । उनका शारीरिक बल अतुलनीय था । जिससे उन्होंने बाल्यकाल में ही अनेक त्रासदायक एवं हिंसक जन्तुओं का वध किया। समय आने पर उन्होंने युद्धकौशल और रजनीति का साँगोपाँग अध्ययन किया युद्ध-नीति के वे कितने प्रकाण्ड पंडित थे यह तो इसी से ज्ञात हो जाएगा कि अर्जुन और सात्यकि जैसे वीर उनके शिष्य थे जिनको उन्होंने युद्ध-विद्या सिखाई थी । गदा-युद्ध के वे अच्छे ज्ञाता थे । निर्भयता और चातुर्य के वे आकर थे ।

शारीरिक बल के अतिरिक्त उनका शास्त्रीय ज्ञान भी बढ़ा-चढ़ा था। वे वेदों और वेदांगों के अनुपम ज्ञाता थे, यह भीष्म[1] की उक्ति से सिद्ध हो चुका है। साथ ही वे संगीत, चिकित्सा-शास्त्र, अश्व-परिचर्या आदि नाना लौकिक विद्याओं के भी पंडित थे। उत्तरा के मृतप्राय बालक (परीक्षित) को जीवन प्रदान करना, तथा अर्जुन के सारथि बनकर भयंकर युद्धक्षेत्र में अपने रथी की रक्षा करना आदि उदाहरण इन बातों को सिद्ध करने के लिए उपस्थित किये जा सकते हैं। शारीरिक बल और मानसिक शक्तियों का चरम विकास तो उन्होंने किया ही था, आचार की दृष्टि से उनकी बराबरी कोई समकालीन पुरुष नहीं कर सकता था। वे महान् सदाचारी तथा शीलवान् थे। माता पिता की आज्ञा का पालन करने तथा गुरुजनों के प्रति पूज्य भाव रखने की भावना को उन्होंने कभी विस्मृत नहीं किया। वे मादक द्रव्यों अथवा द्यूत क्रीडा जैसे व्यसनों से

---

१. द्र० महा० सभापर्व ३८ वां अध्याय (सं०)

सदा दूर रहे, यहाँ तक उन्होंने समय–समय पर यादवों में ये आदेश प्रचारित किये थे कि यदि कोई व्यक्ति मदिरा पीता हुआ पाया जाएगा तो राज्य की ओर से दण्डनीय होगा। ब्रह्मचर्य और संयम की दृष्टि से कहा जा सकता है कि एक पत्नी-व्रत का दृढ़ता से पालन करते हुए भी उन्होंने सपत्नीक बारह वर्ष तक दृढ़ ब्रह्मचर्य धारण किया। तदनन्तर उनके प्रद्युम्न पुत्र हुआ जो रूप, गुण और सदाचार में सर्वथा अपने पिता के ही अनुरूप था। यह खेद की बात है कि पुराणकारों और कवियों ने श्री कृष्ण के इस उज्ज्वल पहलू को सर्वथा विस्मृत कर दिया और उन्हें कामी, लम्पट, कुटिल तथा युद्ध-लिप्सु के रूप में चित्रित किया।

श्रीकृष्ण संध्योपासना तथा अग्निहोत्र आदि दैनिक कर्तव्यों का पालन करने में भी कभी प्रमाद नहीं करते थे। "महाभारत" में स्थान-स्थान पर उनकी इस प्रकार की दिनचर्या के उल्लेख मिलते हैं। दुर्योधन से संधि वार्ता के लिए जाते हुए मार्ग में जब जब प्रातः सायं समय की उपस्थिति होती है श्री कृष्ण संध्या और अग्निहोत्र करना नहीं भूलते। "महाभारत" में लिखा है :—

प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमाह्निकम्
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ॥

"प्रातः काल उठकर कृष्ण ने दैनिक (संध्याहवन आदि) सब क्रियाय कीं, पुनः ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर नगर की ओर प्रस्थान किया।" इसी प्रकार का एक अन्य उल्लेख है :—

कृत्वा पौर्वाह्निकं कृत्य स्नातः शुचिरलंकृतः।
उपतस्थे विवस्वन्तं पावकं च जनार्दनः ॥

"फिर उन्होंने पवित्र वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो, संध्या-वंदन, परमात्मा का उपस्थान एवं अग्निहोत्र आदि पूर्वाह्निककृत्य सम्पन्न किए।"

अब इसे विडम्बना के अतिरिक्त और क्या कहा जाय कि नित्य संध्या-योग (ब्रह्मयज्ञ) के द्वारा सच्चिदानन्द परमात्मा की पूजा करनेवाले देवयज्ञ-रूपी अग्निहोत्र के द्वारा देवताओं का पूजन करने वाले आर्योचित मर्यादाओं के पालक एवं रक्षक आदर्श महापुरुष श्री कृष्ण को साक्षात् ईश्वर कह दिया जाए।

कृष्ण-चरित्र की सर्वोपरि विशेषता उनकी राजनैतिक विलक्षणता और नीतिज्ञता है। राजनीति के प्रति उनका यह अनुराग किसी स्वार्थ भावना से प्रेरित नहीं था और न ही उनकी राजनैतिक विचारधारा

किसी संकुचित राष्ट्रवाद के घेरे में आबद्ध थी। उस युग में तो आज जैसा राष्ट्रवाद जन्मा ही नहीं था। कृष्ण का राष्ट्रवाद तो लोक कल्याण, जन हित करने तथा सब प्रकार की अराजकता, अन्याय तथा शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त कर धर्म राज्य की स्थापना के लक्ष्य को लेकर ही चला था। सम्पूर्ण मानव जाति ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के कल्याण के भाव को लेकर ही उन्होंने राजनीति के क्षत्र में प्रवेश किया था।

सर्वप्रथम उनकी दृष्टि अपने जन्म स्थान मथुरा जनपद के स्वेच्छाचारी, एकतन्त्रात्मक शासन के प्रतिनिधि अत्याचारी शासक कंस के ऊपर गई। उन्होंने पारिबारिक और वैयक्तिक सम्बन्धों का विचार न करते हुए जनता के हित को सर्वोपरि समझा और कंस के विनाश में ही सबके कल्याण को देखा। कंस की मृत्यु के पश्चात ही मथुरा वासियों को अपनी सर्वांगीण उन्नति करने का अबसर मिला। श्री कृष्ण का एक कार्य अभी पूरा ही नहीं हुआ था। जरासंध के आक्रमणों का सिलसिला आरम्भ हो गया। कंस के मारे जाने से जरासंध ने यह तो अनुमान लगा लिया था कि अब अधिक दिनों तक आर्यावर्त में अत्याचार, अनाचार तथा स्वेच्छाचार नहीं चल सकेगा, क्योंकि श्री कृष्ण के रूप में एक ऐसी शक्ति का उदय हो चुका है जो सदाचार, धार्मिकता, मर्यादा-पालन तथा जनहित को ही महत्त्व देती है। कंस भी तो आखिर जरासंध का ही जमाता तथा उसी की नीतियों का अनुगामी था। कंस वध की घटना से जरासंध ने अपनी दुर्नीति तथा षडयंत्र प्रवृत्ति की ही पराजय देखी। वह तुरन्त मथुरा पर चढ़ दौड़ा और एक बार नहीं, सत्रह बार आक्रमण किये। कृष्ण के अपूर्व रणचातुर्य तथा उनके सफल नेतृत्व में यादवों ने जरासन्ध की सेना के दाँत खट्टे कर दिये, परन्तु जब श्री कृष्ण ने ही यह समझ लिया कि शूरसेन प्रदेश सुरक्षा की दृष्टि से उत्तम नहीं है तो उन्होंने यादव जाति के निवास के लिये द्वारिका जैसे भौगोलिक दृष्टि से सुदृढ़ आवास स्थान को ढ़ूंढ़ निकाला और उसे ही यादवों की राजधानी बनाया। और जरासंध के सेनापति शिशुपाल ने प्रथम तो रुक्मिणी के विवाह क अवसर पर पुनः युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के प्रसंग में कृष्ण को प्रथम अर्घ्य देने के प्रस्ताव को लेकर विवाद खड़ा किया तथा यज्ञ ध्वंस करके कृष्ण के धर्मराज संस्थापन के महज लक्ष्य की पूर्ति में बाधक बना। उस समय कृष्ण ने ही शिशुपाल का बध किया और इस प्रकार "विनाशाय च दुष्कृताम" से संकेतित दुष्ट जनों के विनाश रूपी महायज्ञ में एक ओर आहुति प्रदान की। जरासन्ध को समाप्त करने का अवसर

तो इससे पूर्व ही उपस्थित हो गया था। ८६ राजाओं को कैद कर तथा इन अभागे राजाओं की संख्या १०० हो जाने पर उनकी बलि कर देने का जो पैशाचिक विचार जरासन्ध ने कर रखा था उसे सहन करना श्री कृष्ण जैसे धर्मात्मा एवं करुणाशील पुरुष के लिए असम्भव ही था। इस दुष्कृत्य को पूरा करने का विचार रखने के कारण जरासन्ध अपने अत्याचारों की चरम सीमा तक पहुंच चुका था और अब उसे अधिक सहन करना सम्भव नहीं था। मनुष्य जाति का ऐसा शत्रु जरासन्ध भी श्री कृष्ण की नीतिमत्ता तथा भीम के शौर्य से मारा गया। उसमें न तो युद्ध ही हुआ और न अनावश्यक रक्तपात।

"महाभारत" के युद्ध में भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदि कौरव पक्ष के सभी महारथी वीरों का एक एक कर अन्त हुआ और इस प्रकार युधिष्ठिर के धर्मराज्य संस्थापन रूपी महायज्ञ की पूर्णाहुति हुई। इस महत कार्य की सिद्धि में श्री कृष्ण का योगदान तो सर्वोपरि था। श्री कृष्ण की इस अपूर्व नीतिज्ञता, रण चातुरी तथा व्यवहार कुशलता को ठीक-ठीक न समझकर उनपर युद्ध-लिप्सु होने का आरोप लगाना अथवा समस्त देशों को युद्ध की भयंकर एवं विनाशकारी ज्वालाओं में झोंककर स्वयं तमाशा देखनेवाला बताना, सर्वथा अनुचित है। श्री कृष्ण ने यथाशक्य युद्ध का विरोध किया, यह हम महाभारतीय युद्ध की आलोचना के प्रसंग में देख चुके हैं। उन्होंने न तो युद्ध को राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान का एक मात्र अनिवार्य उपाय माना और न उसमें कूद पड़ने के लिये किसी को उत्साहित ही किया। यहां तक की वैयक्तिक मानापमान की परवाह किये बिना वे स्वयं पाण्डवों की ओर से संधि प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गये। यह सत्य है कि इस लक्ष्य को वे पूरा करने में असफल रहे, परन्तु इसमें संसार को यह तो ज्ञात हो ही गया कि महात्मा कृष्ण शान्ति स्थापना के लिये कितने उत्सुक थे तथा युद्ध के कितने विरोधी थे। उन्होंने स्वयं कहा था कि वे पृथ्वी को युद्ध की महाविभीषिका से बचा देखना चाहते हैं।

यह ठीक है कि दुर्योधन ने अपने दुष्ट स्वभाव तथा कुटिल प्रकृति के कारण उनकी बात नहीं मानी, फलतः युद्ध भी अपरिहार्य हो गया, परन्तु लोगों पर यह भी अप्रकट नहीं रहा कि पाण्डवों का पक्ष सत्य न्याय और धर्म का पक्ष था तथा कौरव असत्य, अन्याय और अधर्म का आचरण कर रहे थे। संसार के लोगों को सत्य और न्याय का वास्तविक ज्ञान

कराने में ही श्री कृष्ण को अपूर्व दूरदर्शिता तथा मेधा का परिचय मिलता है। युद्ध होना ही है, जब यह निश्चित हो गया तो श्री कृष्ण की विचार-धारा भी इसी के अनुसार बन गई। फिर तो उन्होंने अत्याचार के शमन और दुष्टों को दण्ड देने के लिये किये जाने वाले युद्ध को क्षत्रिय वर्ण के लिये स्वर्ग का खुला हुआ द्वार बताया तथा अर्जुन को यह निश्चय करा दिया कि आततायियों को मार डालना ही धर्म है। रणक्षेत्र में उपस्थित होते ही अर्जुन में जिन क्लीव भावों का संचार हुआ उन्हें अनार्यजुष्ट, अस्वर्ग्य और अकीर्तिकर बताते हुए श्री कृष्ण ने अर्जुन को विगतज्वर करके युद्ध करने को प्रेरणा दी। वास्तव में क्षात्र धर्म का यही यथार्थ रूप था जिसे कृष्ण ने अपनी ओजस्वी वाणी तथा प्रभाविष्णु शैली में उपस्थित किया। आज हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी श्री कृष्ण की वह ओजस्विनी शिक्षा मन की निराशा, ग्लानि तथा दौर्बल्य को दूर करती है एवं कर्तव्य पालन करने के लिये उठने को प्रेरणा देती है।

यह है कृष्ण की राजनीतिज्ञता का किंचित् दिग्दर्शन ! उन्होंने अपने जीवन में जहाँ अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया, वहां उन्होंने सामाजिक समस्याओं की भी अवहेलना नहीं की। श्रीकृष्ण वर्णाश्रम धर्म के प्रबल पोषक और शास्त्रीय मर्यादाओं के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने स्वयं "गीता" में वर्णाश्रम धर्म का विधान करते हुए वर्णों को गुण एवं कर्मों पर आधारित बताया है। उनके अनुसार जो व्यक्ति शास्त्र विधि को छोड़कर मनमाना स्वेच्छाचार करता है, उसे न तो सिद्धि ही प्राप्त होती है और न परलोक में उत्तम गति। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वे किसी प्रकार की सामाजिक संकीर्णता अथवा कट्टरता के पोषक थे। अनुदारता गतानुगतिकता तथा रूढ़िवादिता के वे प्रबल विरोधी थे। उनकी सामाजिक धारणायें उदारतापूर्ण तथा नीति-युक्त थीं। उन्होंने सदा दलित, पीड़ित एवं शोषित वर्ग का ही साथ दिया। विदुर जैसे धर्मात्मा उनके सम्मान के पात्र रहे। नारी वर्ग के प्रति उनकी महती श्रद्धा थी। कुन्ती, गांधारी, देवकी आदि पूजनीय गरीयसी महिलाओं के प्रति उनके मन में सदा आदर, सम्मान तथा श्रद्धा का भाव रहा। सुभद्रा तथा द्रौपदी आदि कनिष्ठ देवियों के प्रति उनका स्नेह सदा बना रहा। वे जानते थे कि मातृ शक्ति का यथोचित सम्मान होने से ही देश की भावी सन्तान में श्रेष्ठ गुणों का संचार होगा।

श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के इन पहलुओं की समीक्षा कर लेने के पश्चात् भी उनके चरित के उस महान् एवं उदात्त पक्ष की ओर ध्यान

देना आवश्यक है जिसके कारण वे आध्यात्मिक जगत् के सर्वोत्कृष्ट उपदेष्टा समझे गये और योगेश्वरों में उनकी परिगणना हुई । वे आज भी कोटि कोटि जनों की प्रेरणा, श्रद्धा तथा निष्ठा के पात्र बने हुए हैं। श्रीकृष्ण राजनीतिज्ञ थे, धर्मोपदेशक तथा धर्मसंस्थापक भी थे। वे समाज–संशोधक तथा नूतन क्रांति-विधायक भी थे, किन्तु मूलतः वे योगी तथा अध्यात्म-साधना के पथिक थे। उन्होंने जल में रहने वाले कमल की भांति संसार में रहते हुए, सांसारिक वासनाओं से निर्लिप्त रहकर कर्तव्य की भावना से आचरण करने के योग की शिक्षा दी।

वे ज्ञान और कर्म के समन्वय के पक्षपाती थे। साथ ही उपासना योग का भी समर्थन करते थे। ज्ञान, कर्म और उपासना का सामंजस्य ही आर्यचिंतन की विशेषता है और यह समन्वय-भावना ही श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में साकार हो उठी थी। श्रीकृष्ण स्वयं सच्चिदानन्द ब्रह्म के परम-उपासक थे और इस सर्वोच्च तत्त्व का साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् भी वे लोक-मार्ग से च्युत होना अनुचित मानते थे। "गीता" में उन्होंने यह स्पष्ट कहा कि पूर्णकाम व्यक्ति के लिये यों तो कुछ भी करना शेष नहीं रहता, किन्तु लोक-यात्रा-निर्वाह की दृष्टि से उन्हें भी आर्योचित मर्यादाओं का पालन करना ही पड़ता है। इस प्रकार उन्होंने कालान्तर में प्रवर्तित श्रमणवाद-प्रतिपादित निवृत्ति-मार्ग का एकान्ततः अनुसरण करने को अनुचित बताया। श्रीकृष्ण के दर्शन का यही चरम तत्त्व है और यही लौकिक सफलता का भी रहस्य है।

जीवन की इन विविधतापूर्ण एवं सर्वांगीण प्रवृत्तियों का समन्वित अनुशीलन एवं परिष्कार ही श्रीकृष्ण-चरित्र की विशिष्टता है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण जैसा व्यक्ति इस देश में ही नहीं बल्कि संसार में भी कदाचित् ही जन्मा हो। आर्यमर्यादाओं के अप्रतिम रक्षक राम से उनके विविध व्यक्तित्व की तुलना अवश्य की जा सकती है, परंतु दोनों के युग तथा जीवन की अन्य परिस्थितियों में मौलिक अन्तर था । राम स्वयं आदर्श राजा थे, किन्तु कृष्ण को आदर्श राज्य संस्थापन का कार्य स्वयं करना पड़ा। कृष्ण तो राजाओं के निर्माता, परंतु स्वयं राजसत्ता से दूर रहने वाले साम्राज्य-संस्थापक थे। राम के समक्ष वैसी कठिनाइयां नहीं आई जिनसे कृष्ण को जूझना पड़ा। अतः किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाय, श्रीकृष्ण का चरित्र एवं व्यक्तित्व भूमण्डल में अद्वितीय ही माना जाएगा।

□

आर्यवर शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण

आचार्य वेदव्रत मीमांसक, आर्षगुरुकुल वड्लूर, कामारेड्डी
निजामाबाद (आ. प्र.)

भारत के इतिहास रूपी आकाश में श्रीकृष्ण जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान दीखते हैं। उनके जीवन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे असाधारण एवं अनुपम पुरुष थे। इतिहास में उनके समान सर्वाङ्गीण जीवन नहीं दीखता। बाल्यकाल में व्यायाम आदि से उन्होंने अपने शरीर को सुन्दर सुदृढ़ एवं परिपुष्ट बनाया। पश्चात् सान्दीपनि आश्रम में जाकर ब्रह्मचर्य पूर्वक वेद वेदाङ्गों का गूढ़ अध्ययन किया। आगे चलकर सम्पूर्ण जीवन में मनुष्य को मोक्ष प्रदान करने वाली वैदिक परंपरा को जीवित रखने वाले शिथिल आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य को अपनी प्रखर बुद्धिमत्ता, विमल वेद ज्ञान, प्रतिभा, प्रभाव, व्यक्तित्व, बल, धैर्य एवं योगमय पुनीत उज्ज्वल जीवन से सुदृढ़ किया। वेदोक्त धर्म का अनुसरण करते हुए उन्होंने अपने जीवन को समुन्नत बनाया। वे महान् बलवान, मल्ल विद्या निपुण, गोभक्त, आदर्शशिष्य एवं पुत्र, वेदशास्त्र पारङ्गत, वेदानुयायी, धर्मज्ञ, कर्मकाण्डी, नीति निपुण, धनुर्वेद विद्या विशारद, राजनीति मर्मज्ञ, कुशल प्रशासक, वीर योद्धा, सफल सारथी, अतुल पराक्रमी, वाग्मी, व्यवहार कुशल, आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श गृहस्थ, योगिराज, तत्त्वज्ञ, आर्य मर्यादा पालक, लोक संग्रही, धीर, उदार, चक्रवती साम्राज्य-स्थापक, रक्षक और अकुण्ठित-धी थे। उनका उदात्त जीवन एवं आदर्श मानव समाज को अत्यधिक प्रेरणा अतीत काल, वर्तमान काल एवं भविष्यकाल में भी देता रहेगा। उनके महान् चरित्र का ही परिणाम यह हुआ कि श्रीकृष्ण को अतिमानव, भगवान् का अवतार भी माना जाने लगा।

श्रीकृष्ण के चरित के सच्च पारखी महर्षि दयानन्द ने श्रीकृष्ण के वास्तविक चरित्र को मानव समाज के समक्ष सबल शब्दों में उपस्थित किया और कहा कि "देखो, श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।"

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, वैसा ही अन्य मनुष्य करते हैं। वह जिसको प्रमाण मानता हो, लोक उसका अनुकरण करता है। यह सत्य है।

आज के युग में भी यदि हम श्रीकृष्ण के वास्तविक जीवन को समझें, तो निश्चित है कि हम उसका अनुकरण अवश्य करना चाहेंगे और करेंगे। यदि श्रीकृष्ण के इस स्वरूप को संसार में फ़ैलावें तो संसार का उद्धार होगा। आज हमारे पतन का एक कारण अपने महान् पुरुषों को यथावत् न समझना, तद्विरुद्ध समझना और उनका अनुकरण न करना है। श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण करना इस छोटे से लेख में संभव नहीं है। पुनरपि स्थालीपुलाक न्याय से उनके जीवन की चार घटनाएं महाभारत के आधार पर अति संक्षेप में प्रस्तुत की जाती हैं।

(१) अर्जुन श्रीकृष्ण की सम्मति के अनुसार सुभद्रा का हरण करके ले गए। तब यादव गण बलराम आदि सब लोगों ने अर्जुन के इस कृत्य को धृष्टता एवं अपना अपमान समझा। खिन्न होकर अर्जुन के इस कृत्य की निन्दा करते हुए प्रतिक्रिया के रूप में सोचने के लिए एक सभा की। उसमें श्रीकृष्ण की सम्मति मांगी। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के द्वारा सुभद्रा-हरण को उचित ठहराते हुए कहा कि— "...प्रसह्य हृतवान् कन्यां धर्मेण पाण्डवः" (आदि प० २१३-५)

अर्थ—"अर्जुन ने सुभद्रा का हरण धर्मानुसार किया है।" श्रीकृष्ण जी के मुख से यह सुनकर सब स्तब्ध हुए। सबने मौन होकर उनके मन्तव्य को स्वीकार किया। अर्जुन के प्रति यादवों का रोष समाप्त हुआ। स्थिति शान्त हुई।

(२) द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला था। उसमें पांडव ब्राह्मण वेष धारण कर पहुंच गये। लक्ष्य वेध किया। द्रौपदी ने पति का वरण किया।

इस पर क्षत्रिय राजाओं ने आपत्ति की। युद्ध के लिए उद्यत हुए। पाण्डव भी उद्यत हुए। अर्जुन से कर्ण का, भीम से शल्य का युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण जी समझ गए कि "यह स्थिति भयंकर रूप धारण कर लेगी। युद्ध होगा। रक्तपात होगा। बड़ा अनर्थ होगा।" इसलिये उन क्षत्रिय राजाओं को यह कहकर निवृत्त किया कि इस ब्राह्मण ने धर्मानुसार ही द्रौपदी को प्राप्त किया है। श्रीकृष्ण के इस कथन का कोई विरोध नहीं कर सका। स्थिति शान्त हुई।

(३) पाण्डव एवं द्रौपदी काम्यक वन में वास कर रहे थे। श्रीकृष्ण जी उनसे मिलने के लिये चले गये। द्रौपदी अपनी विपत्ति की करुण कहानी मार्मिक शब्दों में श्रीकृष्ण को सुनाकर रो पड़ी। उसके उत्तर में द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए श्रीकृष्ण ने जो जो कुछ कहा उसका सारांश इस प्रकार है—"उस समय मैं द्वारिका में अथवा उसके आस पास नहीं था। द्वारिका आते ही सात्यकि से दुःख ग्रस्त आपके विषय में सुना है। यह सुन उद्विग्न होकर आप लोगों को देखने के लिए तुरन्त यहाँ आया। यदि मैं उस समय द्वारिका में होता तो धृतराष्ट्र, दुर्योधन और कौरवों के न बुलाने पर भी द्यूत स्थान में पहुँचता। द्यूत के अनर्थों को बतलाता और रोकता। यदि न मानते तो धृतराष्ट्र को पकड़ लेता। यदि उस समय उनकी ओर से कोई आते तो उनको मार डालता।

(४) जब राजसूय याग में अभिषेक के दिन महर्षि, ब्राह्मण एवं राजा लोग अन्तर्गृह में प्रविष्ट हुए, तब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि सर्व प्रथम किसकी पूजा हो। तब पितामह भीष्म ने श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तुत किया। उसको प्रस्तुत करने के कारण को बतलाते हुए उन्होंने कहा[1]...

ज्ञानवृद्धो द्विजातीनाँ क्षत्रियाणां बलाधिकः।
पूज्ये ताविह गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ ॥१७॥

अर्थ—ब्राह्मणों में ज्ञानवृद्ध क्षत्रियों में अधिक बलशाली पूजार्ह होता है। पूजनीय गोविन्द में ज्ञानवृद्धता और बलवृद्धता दोनों ही विद्यमान हैं।

वेद वेदाङ्ग विज्ञानं बलं चाप्यमितं तथा।
नृणां हि लोके कस्यास्ति विशिष्टं केशवादृते ॥१८॥

अर्थ—श्रीकृष्ण में वेद वेदाङ्गों का विज्ञान तथा अपरिमित बल है। संसार में उनसे अधिक ज्ञानवान् और बलवान् कौन है?

---

१. द्र० महा सभापर्व ३८।१७-२८ (सं०)

दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिबुद्धिरुत्तमा ।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताऽच्युते ॥१९॥

अर्थ—दान, दाक्षिण्य, शास्त्र ज्ञान, शूरता, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, नम्रता, शोभा, धैर्य, तुष्टि और पुष्टि आदि गुण श्रीकृष्ण में निश्चित रूप से हैं ।

तमिमं सर्वसम्पन्नमाचार्यं पितरं गुरुम् ।
अर्च्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे संमन्तुमर्हथ ॥२०॥

अर्थ—ऐसे सर्व गुण सम्पन्न आर्य, पिता, पूजित एवं पूजा के योग्य श्रीकृष्ण का सम्मान करना चाहिए ।

ऋत्विग्गुरुर्विवाह्यश्च स्नातको नृपतिः ।
सर्वमेद्धृतषीकेशे तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः ॥२१॥

अर्थ—ऋत्विक्, गुरु, कन्यादान से सत्कार्य, स्नातक, राजा और मधुर स्वभाव वाले ये सारे गुण जितेन्द्रिय श्रीकृष्ण में हैं । अतः उनकी पूजा की है ।

सवृद्धबालेष्वथवा पार्थिवेषु महात्मसु ।
को नार्हम्मन्यते कृष्णं को वाप्येनं न पूजयेत् ॥२८॥

अर्थ—बालकों, वृद्धों, राजाओं और महात्माओं में ऐसा कौन है जो श्रीकृष्ण को पूजा के योग्य न मानता हो अथवा उनकी पूजा न करता हो ।

अग्र पूजा के समय ऋषि, मुनि, वेदज्ञ, ब्राह्मण, ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, राजे, महाराजे आदि के होते हुए भी भीष्म ने श्रीकृष्ण को पूजनीयतम सिद्ध किया । इससे सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व अपने युग में कितना उत्कृष्ट था और उनका कितना सम्मान था । उनके पूजनीय, पक्षपात रहित, दूरदृष्टिपूर्ण, पाण्डित्यपूर्ण पावन जीवन से लोग किस प्रकार परिचित थे और प्रभावित थे ।

धन्य हैं श्रीकृष्ण और धन्य हैं ऋषि दयानन्द, जिन्होंने श्रीकृष्ण जी के जीवन को यथार्थ में समझा और उनके उत्तम चरित्र पर पड़ी कालिमा तुल्य कलंक-पंकों को धोकर उनके विमल चरित्र को हजारों वर्षों के पश्चात् संसार के समक्ष उपस्थित किया । सत्य ही कहा है—हीरों की परख कोई बिरला जौहरी ही कर पाता है ।

□

आज हम भी एक मित्र का वर्णन करने चले हैं, जो वास्तव में वेद की मित्र की परिभाषा तथा भर्तृहरि के लक्षण को सार्थक करते हैं, लोक में प्रायः देखने में आता है कि धन, वैभव, पद या प्रतिष्ठा आदि में बढ़े हुए मित्र से जब अपना मित्र मिलने पहुंचता है तो उसे उपेक्षा मिलती है, ऐसा ही जब एक मित्र जब अपने मित्र से मिलने गया तथा मित्र ने उससे पूछा कि आप कहाँ से तथा किसलिये आये हैं तो उसने खीझ कर कहा कि हूं तो मैं अमुक व्यक्ति, जिसे आप कभी मित्र कहा करते थे तथा आया इसलिए था कि सुना था कि आपको कम दिखने लगा है किन्तु यहाँ आकर देखा कि आप तो बिल्कुल अन्धे ही हो गए हैं। द्रुपद ने भी तो द्रोण से कहा था कि राजा और भिक्षुक की मैत्री कैसी ? मैत्री तो समान लोगों के साथ होती है।

किन्तु आज तो हम एक विचित्र मित्र की कथा सुनाने चले हैं, द्वारिका के राज भवन के द्वार पर एक भिक्षुक खड़ा है, दरिद्रता की साक्षात् मूर्ति, न सर पर पगड़ी है न शरीर पर कुर्त्ता, धोती भी मैली तथा स्थान-स्थान से फटी हुई है, पैरों में जूते भी नहीं, चकित दृष्टि से सारे सौन्दर्य की ओर निहार रहा है, उसे उसकी पत्नी भेजा है, घर दरिद्रता का वास था। बालकों का पेट भी न भरता था। गृहस्थी अपने दुःख को सह लेता है किन्तु सन्तान का दुःख उसे असह्य हो जाता है। पर्वत सा प्रताप भी डगमगा गया था सन्तान की भूख के आगे फिर वह बेचारी तो स्त्री थी। उसके सामने बातों ही बातों में एक दिन उस दरिद्र ब्राह्मण ने बचपन में अपनी कृष्ण से मित्रता की बात कह दी थी। फिर क्या था, वह लगी प्रतिदिन उसे कृष्ण के पास जाकर कुछ लाने के लिये बाधित करने। वह टालता रहता था। वास्तव में उसके सम्मुख द्रोण का दृश्य आ जाता था। वह सोचता था कि यदि कृष्ण ने मुझे अपमानित करके निकाला तो जीवन भर का सम्मान क्षण भर में नष्ट हो जाएगा- मैंने जीवन में केवल सम्मान[1] रूपी धन ही तो संजोया है। न तो मेरे

---

(१) सच्चे एवं निर्धन ब्राह्मण की स्वाभिमानवृत्ति एक कवि के शब्दों में पढ़िये—

शिक्षक हों सगरे जग के प्रिय ताको कहा अब देती है शिक्षा :
जो तपते परलोक सुधारत सम्पत्ति की, तिनको नहीं इच्छा ।।
मेरे हिय हरि के पद-पंकज बार हजार, न देखूं परोच्छा।
औरन को धन चाहिये बावरी ब्राह्मण का, धन केवल भिक्षा ।।

[कविवर नरोत्तमदास] [सं०]

श्रीकृष्ण की आदर्श मित्रता

आचार्य सत्यव्रत राजेश,
प्राध्यापक गुरुकुल कांगड़ी, वि० वि० हरिद्वार

विश्व की दुर्लभ वस्तुओं में एक सच्चा मित्र भी है, संसार में दावत खाने तथा दावत खिलाने वाले बहुत लोग हैं जो अपने को मित्र बतलाते हैं, अनेक युवक जो घर से पवित्र जीवन लेकर कालिज गये थे जब अनेक व्यसनों में फँसकर घर आते हैं तथा उनसे पूछा जाता है कि उसे ये व्यसन कहाँ से लगे तो वह मित्रों का नाम लेते हैं, ऐसे मित्रों को मित्र कहते भी लज्जा आती है, वेद माँ ने तो कहा था—'सखा सखायं व्यतरद् विषूचीः मित्र वह है जो मित्र को विषमता से पार कर दे, विषम परिस्थितियों में सहयोग करके उनसे निवृत्त कर दे, कहाँ वेद की यह उच्चता तथा कहाँ आज का निकृष्ट मित्रों का वातावरण। इन विषमताओं का चित्रण करते हुए ही कदाचित् भर्तृहरि ने नीति शतक में मित्र के लक्षण लिखते हुए कहा था—

> पापान्निवारयति योजयते हिताय,
> गुह्यं च निगूहति गुणान् प्रकटी करोति।
> आपद्गतं न जहाति ददातिकाले,
> सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

अर्थात् मैत्री विषय के विशेषज्ञ मित्र के ये लक्षण बताते हैं—

(क) वह अपने को पाप के कार्यों से सदैव बचाता है।

(ख) हितकारी कार्यों में लगाता है।

(ग) उसकी गुप्त रखने योग्य बातों को गुप्त रखता है।

(घ) अपने मित्र के गुणों का सर्वत्र बखान करके उन्हें सबके सामने प्रकट करता है।

(ङ) आपत्ति में पड़े मित्र को कभी छोड़ता नहीं तथा

(च) समय पड़ने पर उसकी सहायता करता है।

पास विपुल संपदा, किन्तु लोग सम्मान से सर तो झुकाते हैं। वही सर जो सदा ऊंचा रहा, क्या पेट के लिये कृष्ण के सामने झुका दूं। फिर यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि वह उस झुके सर का उचित मूल्य आँके या न आँके, कौन जाए इतनी लम्बी यात्रा करके संदिग्ध कार्य के लिये। क्या मैं कृष्ण की उपेक्षित दृष्टि को सह पाऊंगा। टूट जाएगी जीवन भर की आस्था भी, कि कृष्ण मेरे मित्र थे। मुझे नहीं जाना किसी को द्वारिका। किन्तु पत्नी भी विदूषी थी। उसने समझाया कि ब्राह्मण तो अपमान को अमृत समझता है। फिर आप कृष्ण से कुछ भी न मांगना। वे दें तो भी न लेना। केवल उनसे मिल हो आना। कैसा है आपका हृदय जो अपने परमस्नेही सखा से भी मिलने की इच्छा नहीं रखता। मुझे तो मेरी सखियाँ सदा याद रहती हैं तथा उनसे मिलने के लिये मन सदैव ललचाता रहता है। पत्नी का यह तीर निशाने पर बैठा तथा सुदामा का मैत्री भरा हृदय कृष्ण से मिलने के लिये बालक की भाँति मचल उठा बहुत दिन मिले हो गए चलो मिल ही लें। प्रेम तथा सम्मान न सही मित्र दर्शन तो मिल ही जाएगा। और इसी अभिलाषा से अनेक कष्ट सहकर यह दरिद्र ब्राह्मण द्वारिका पहुंचा है। उसकी अवस्था पाठक पूर्व ही देख चुके हैं।

द्वारिका की राजसभा भवन के सामने सुदामा खड़ा है। मन में अनेक संशय आते जाते रहते हैं। कभी सोचता है कि कृष्ण से मिलने के लिये द्वारपाल से कहूं तथा तुरन्त मन में भाव आता है कि कृष्ण अपने राज्य कार्यों में तथा राज्य सुखों में व्यस्त एवं लिप्त होंगे। उनके पास इतना समय कहाँ है जो मेरे लिये मिलने का समय निकाल सकें। चलो कभी कहीं भ्रमण आदि के लिये जायेंगे तो दूर से दर्शन कर लूंगा। फिर मन कहता कि ऐसे तो बहुत समय बीत सकता है। न जाने कब वे बाहर काम से निकलें। निकले भी तो यह क्या पता किस द्वार से निकलें। चारों ओर ही तो द्वार हैं राजसभा भवन के। अतः द्वारपालों से सूचना भिजवा देता हूं इच्छा हो तो मिल लेंगे अन्यथा चला जाऊंगा वापस अपने गाँव। यह तो देख ही लिया है कि कृष्ण सुखी है यही क्या मेरे लिये कम हर्ष तथा सन्तोष की बात है। इसी ऊहापोह में पड़े हुए पर्याप्त समय से खड़े उसे देखकर द्वारपाल ने कहा कि महाराज फिर कभी आना। इस समय हमारे महाराजा राज्य कार्यों में व्यस्त हैं यह दान का समय नहीं है। द्वारपाल की बात सुनकर सुदामा का साहस बढ़ा तथा

बड़े संकोच के साथ उसने द्वारपाल से कहा कि मैं भिक्षा या दान माँगने के उद्देश्य से नहीं आया हूं अपितु श्री कृष्ण जी मेरे बाल सखा हैं मैं उनसे मिलने के लिए आया हूं। द्वारपाल ने उन्हें सर से पैर तक देखा तथा मन में सोचा कि ये व्यक्ति कहीं महाराजा से मिलने का बहाना तो नहीं बना रहा। किन्तु उनके मुख पर अडिग विश्वास देखकर उसने विचारा कि यदि यह वस्तुतः ही महाराजा के मित्र हुये तथा इन्होंने उन्हें बतलाया कि मैंने इनके कहने पर भी आप से इन्हें नहीं मिलाया तो महाराज अप्रसन्न होंगे। अतः वह अन्दर गया तथा श्री कृष्ण से निवेदन किया कि महाराज द्वार पर एक व्यक्ति खड़ा है। है कृशकाय तथा दरिद्र। आपसे मिलना चाहता है तथा अपना नाम सुदामा बतलाता है। क्या उसे अन्दर आने दिया जाए। किन्तु आश्चर्य "सुदामा" इन तीन अक्षरों में क्या जादू था कि द्वारपाल से पहले द्वारिकाधीश दौड़ पड़े नंगे पाँव। धरी रह गई राज्य की सब मर्यादाएं और व्यवस्थाएं। और बाहर आकर द्वारपाल ने देखा महाराज कृष्ण उस दीन से लगने वाले व्यक्ति से गले लगकर मिल रहे हैं तथा रो रहे हैं। हिचकियों के बीच निकले शब्द द्वारपाल ने सुने महाराज कृष्ण जी कह रहे हैं, "सुदामा क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं था जो इतने कष्ट सहते रहे तथा मुझे सूचित न किया। क्या मैं आपका वही पुराना मित्र नहीं हूं जो गुरु गृह पर साथ-साथ पढ़ते तथा गुरु सेवा करते थे। मुझे भी धिक्कार है जो राज्य कार्यों में इतना व्यस्त हो गया था कि अपने मित्र को भी भुला बैठा, सुदामा क्या मुझे क्षमा नहीं करेंगे ? और वह दीन सा लगने वाला दरिद्र ब्राह्मण अपने को इन्द्र सा गौरवान्वित समझ रहा था। भूल गया था अपनी आर्थिकस्थिति। नंगे सिर, नंगे पैर, नंगे तन तथा फटी धोती को, जब उसने देखा कि सिंहासन पर उसे बैठाकर नरेन्द्र कृष्ण उसके पैर धो रहे हैं, रुक्मिणी जल डाल रही है तथा कांटों और बिवाई से भरे उसके पैरों पर जल के साथ ही साथ उसके बाल सखा कृष्ण के आँसू भी गिर रहे हैं।

रानी तथा राज्याधिकारी चकित थे कि अहर्निश राज्य कार्यों में डूबे कृष्ण अपने मित्र के पास, जहाँ उन्हें ठहराया था, जाकर घंटों घुल-मिल कर बातें करते रहते थे मानो वे बातें राज्य कार्यों से भी आवश्यक हों। दोनों सटकर बैठे होते तथा हंसी से राज्यातिथि गृह गूंज उठता। सुदामा को लगता कि वह संसार के दुःख द्वन्द्वों से दूर एक ऐसे स्थान पर आ गया है जहां न चिन्ता है, न दुराव और न अपनत्व की न्यूनता।

उसे वापिस अपने घर आने पर आश्चर्य हुआ कि वह अपने मन में कृष्ण से कुछ न मांगने के जिस गौरव को संजोए था वह भी उसकी कल्पना मात्र थी, उसका घर झोंपड़ी न था किन्तु उसके स्थान पर द्वारिका के राज्य भवन से भी सुन्दर अट्टालिका थी तथा वस्त्राभूषणसज्जिता उसकी पत्नी उसे नीचे खड़ा देखकर दौड़कर नीचे आकर उसके चरण स्पर्श कर रही थी एवं कृष्ण को प्रशंसा करते न अघाती थी। यह था श्री कृष्ण की मित्रता का सच्चा आदर्श।—

'आपद्गतं न जहाति, ददाति काले'।

यह (योगेश्वर श्री कृष्ण) अंक
अगस्त-सितम्बर मास का है।
पाठक कृपया नोट करें। पृष्ठ
२ पर तथा अन्तिम पर केवल
अगस्त छपा है।

क्या वेदों में श्री कृष्ण का वर्णन है ?

(डॉ० शिवपूजन सिंह कुशवाह, गीता श्रम ज्वालापुर, हरिद्वार)

आजकल के पौराणिक वेद संहिताओं से कृष्ण जी को ईश्वरावतार सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। वेदों में 'कृष्ण का नाम आता है परन्तु वेदों में रूढ़ि शब्द नहीं हैं, वरन् सभी शब्द यौगिक हैं। पौराणिकों की यह क्लिष्ट कल्पना है कि वेदों में महाभारत कालीन कृष्ण की चर्चा है। इस विषय में एक मन्त्रार्थ पर यहाँ विचार किया जाता है—

"अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः। वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि"— (ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ९ मन्त्र १)

पौराणिक विद्वान पं० माधवाचार्य शास्त्री ने अपनी पुस्तक "दूध का दूध पानी का पानी" के पृष्ठ ४८ में इस मन्त्र का थोड़ा अंश देकर "श्री कृष्ण का अर्जुन में गर्भाधान" सिद्ध करने का कुप्रयास किया है।

मन्त्र में 'कृष्ण' व 'अर्जुन' का पाठ आ जाने से महाभारत कालीन कृष्ण व अर्जुन का वर्णन समझना पौराणिकों का भ्रम मात्र है। वेदों में कोई अनित्य इतिहास नहीं है। इस मन्त्र की व्याख्या रखने से यही स्पष्ट होता है कि यहाँ मन्त्र में 'दिन' व 'रात्रि' की ही चर्चा है।

[१] **महर्षि दयानन्द जी सरस्वती**—पदार्थ—(अहः) दिनम् [च] [कृष्णम्] रात्रिः [अहः] व्याप्तिशीलम् [अर्जुनम्] ऋजुगत्यादिगुणम् [च] [वि] विरोधे [वर्त्तेते] [रजसी] रात्र्यहनी (वेद्याभिः) वेदितव्याभिः (वैश्वानरः) विश्वस्मिन् नरे नेतव्ये प्रकाशमानः [जायमानः] उत्पद्यमान इव (राजा) (अव) (अतिरत्) तरति [ज्योतिषा] प्रकाशेन [अग्निः] [तमांसि] रात्रीः।

भावार्थ—अत्रोपमालं० यथा रात्रिदिने संयुक्ते वर्त्तेते तथैव राजा

प्रजे अनुकूले भवेतां, यथा सूर्यः प्रकाशेनऽन्धकारं निवर्त्तति तथैव राजा-विद्याविनय प्रकाशेनाऽन्धकारंनिवर्त्तयेत् ।

पदार्थ—हे मनुष्यों ! [अहः] दिन [कृष्णम्] रात्रि [च] और अहः व्याप्तिशील (अर्जुनम्) सरलगमन आदि गुणों को [च] भी (रजसी) रात्रि दिन [विद्याभिः] जानने योग्यों के साथ [विवर्त्तते] विविध प्रकार वर्त्तते हैं और [राजा] राजा के (न) समान [जायमानः] उत्पन्न हुआ [वैश्वानरः] सम्पूर्ण करने योग्य कार्यों में प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि [ज्योतिषा] प्रकाश से (तमांसि] रात्रियों का (अव अतिरत्) उल्लंघन करता है ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे रात्रि दिन संयुक्त हैं वैसे ही राजा और प्रजा अनुकूल हों...... ।[1]

[२] पं जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मोमांसातीर्थ ने भी 'कृष्ण' का अर्थ 'रात्रि' व 'अर्जुन' का अर्थ 'दिन' ही किया है ।

(३) **श्री सायणाचार्य**—आहरति पुरुषोऽस्मिन कर्माणीति अहः । कृष्णं कृष्ण वर्णम् । एतत्सामानाधिकरण्यादहः शब्दो रात्रिवचनः । तमसा कृष्ण वर्णा रात्रिः अर्जुनं च सौरेण तेजसा शुक्ल वर्णम् अहः दिवसश्च रजसी स्वस्वभासा सर्वं जगद्रञ्जयन्तौ वेद्याभिः वेदितव्याभिरनुकूलतया ज्ञात व्याभिरनुकूलतया ज्ञातव्याभिः विवर्त्तते विविधं पर्यावर्तेते ।...[2]

अर्थात अहः शब्द का अर्थ यह है कि 'जब मनुष्य कार्य करता है, 'कृष्ण शब्द का अर्थ काला है । चुंकि दोनों एक साथ आ गए हैं अतः कृष्ण का अर्थ रात्रि हुआ । अन्धकार के कारण रात्रि 'काली' होती है और सुर्य के तेज के कारण दिन सफद होता है । दिन और रात्रि अपने प्रकाश के कारण सम्पूर्ण संसार को प्रसन्न करते हैं और भली भाँति जाना जा सकने योग्य अपनी क्रियाओं के द्वारा विविध कर्मों को करवाते हैं ।

[४] **श्री माधव भट्टेन वैङ्कटार्य सूनुना**— "अहश्च । अहः । कृष्ण

---

१. "ऋग्वेद भाष्यम्" षष्ठमण्डलम् [अष्टम भागात्मकम्] पृष्ठ १०३५-१०३६ [संवत १९५२ वि० वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित]

२. "ऋग्वेदसंहिता श्रीमत्सायणाचार्य विरचित भाष्यसमेता, ६, ७ मण्डलात्मक" [सन् १८४१ ई० (सके १८६३) में वैदिक संशोधन मण्डल, पूणे द्वारा प्रकाशित] पृष्ठ २८

वर्णम् । अहः । श्वेतवर्णम् । चेत्याहोरात्रे वदति । ते विवर्तेते । ते विवर्तेते तेजसा तमसा च । रञ्जके । वेदितव्याभिः प्रवृत्तिभिः इति यास्कः । वैश्वानरः । जायमानः इवोद्यम् । आदित्यः । सर्वेषां ज्योतिषा । विनाशयति । अग्निः । तमांसि ।"

और वे 'कृष्ण' शब्द पर पाद टिप्पणी में लिखते हैं—

"१४ कृष्णं कृष्ण वर्णम् । एतत्सामानाधिकरण्यादहः शब्दो रात्रि वाचकः तमसा कृष्ण वर्णा ।

अर्थात कृष्ण का अर्थ काला, रात्रिवाचक है ।

'अर्जुन' शब्द पर पाद टिप्पणी—

"१६ श्वेत P. सौरेण तेजसा शुक्लवर्णम् Sy. अर्जुन शब्दो हि शुक्ल पर्यायः Dur. अर्जुन सब्दो रूपनाम् ।...

अर्थात—'अर्जुन' का अर्थ शुक्ल (श्वेत) है । अर्जुन व शुक्ल शब्द पर्यायवाची हैं ।

(५) यही मन्त्र निरुक्त २।२२ में भी आया है जहाँ 'रात-दिन अर्थ किया है ।

इसी प्रकार वेदों में जहां भी 'कृष्ण' शब्द आए हैं वहां इनके यौगिक अर्थ हैं ।

(६) पं० रघुनन्दन शर्मा 'साहित्य भूषण' ने भी 'वैदिक सम्पत्ति' में महाभारत कालीन प्रायः सभी व्यक्तियों के नामों को वेदों से प्रदर्शित करके उनका यौगिक अर्थ किया है । अतः वेद पठित 'कृष्ण' शब्द से देवकी पुत्र कृष्ण का ग्रहण कदापि नहीं हो सकता ।

भगवान कृष्ण ने स्वयं को ईश्वरावतार मानने वालों को मूर्ख बतलाया है—

"अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥
(गीता० ७:२४)

---

१. "ऋगर्थ दीपिका" पृष्ठ ४६५-४०६ [डा० श्री लक्ष्मण स्वरूप जी एम० ए०, डी० फिल० द्वारा सम्पादित । चतुर्थ भाग, श्री मोतीलाल बनारसी दास बाराणसी द्वारा सन् १९५५ ई० में प्रकाशित]

सर्वव्यापक ईश्वर के विकार रहित सर्वश्रेष्ठ परमात्मा रूपी भाव को न जानते हुए मुर्ख लोग मुझे शरीरधारी को परमात्मा समझते हैं।

'सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(गीता १८।६६)

इस श्लोक का पौराणिक अर्थ करते हैं कि श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरे शरण में आ जाओ। मैं सर्व-पापों से छुटकारा दिला दूंगा, शोक मत कर। पर यह अर्थ अशुद्ध है। इस श्लोक में क्या वास्तविक अर्थ 'सर्वधर्मान्' से 'शकन्ध्वादिषु' पररूपं वाच्यम् व्याकरण के नियमानुसार अधर्मान्' अर्थ लेना चाहिए।

अतः गीता से ही कृष्णचन्द्रजी ईश्वर के अवतार सिद्ध नहीं होते हैं।

---

१. पं० लेखराम कृत जीवन चरित्र में महर्षि दयानन्द कृत इस श्लोक की व्याख्या।

षोडश कलावतार श्रीकृष्ण

(आचार्य वीरेन्द्र मुनिशास्त्री एम० ए०, काव्यतीर्थ
उपाध्यक्ष विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ)

वि० सं० २०४६ के भाद्रपद कृष्णा ८ से श्रीकृष्ण संवत् ५२१५ आरम्भ होगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि ५२१४ वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। इतने वर्षों से बराबर उन्हें स्मरण करते रहने का कारण उनका महापुरुष होना है।

पौराणिकों ने उन्हें विष्णु का अवतार और वह भी १६ कलाओं वाला, अलङ्कार रूप में, बताया। यह काव्य की अतिशयोक्ति है। ईश्वर का अवतार कदापि नहीं हुआ और न हो सकता है। वह एकदेशी (कहीं स्थानविशेष पर स्थित) नहीं है, सर्वव्यापक है अतः कहीं से उतर कर पृथिवी पर जन्म नहीं लेता। आश्चर्य है कि इधर तो अवतार माना और उधर नीचे गिराकर 'चोर-जार-शिरोमणि' भी कह दिया। ये दोनों बातें कितनी असत्य हैं?

षोडश कलावतार का अर्थ १६ ईश्वरीय गुणों को धारण करने वाला महापुरुष है। इसका सूत्र यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र है—

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥
(अ० ८, मन्त्र ३६)

यहाँ परमात्मा को षोडशी (१६ कला वाला) इसलिए कहा गया है क्योंकि वह १६ कलाओं (गुणों) से युक्त या उनको बनाने वाला है। साधारण जन नहीं जानते कि वे १६ कलाएँ कौन सी हैं। इनका स्पष्टीकरण प्रश्न उपनिषद् (६. २. ४) में तथा केवल उपनिषद् में जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (४. २५ और १.४६) में है किन्तु वहाँ नाम कुछ भिन्न हैं। १६ कलायें जिसने बनायीं, जिसमें हैं, जिसको हैं या जिससे हैं वह परमात्मा

१६ कलाओं की विभिन्न ग्रन्थों से उद्धृत तालिका

	प्रश्नो प. ६।४	य.भा. ८।३६	य.भा. ३२।५	ऋ भा. भू वेद विषय विचार	आर्या. २।१४	जै. उ. ब्रा. ४।२४	जै ३ ब्रा १।४६
१	प्राण	इच्छा	प्राण	ईक्षण	ईक्षण	सत्	भद्र
२	श्रद्धा	प्राण	श्रद्धा	प्राण	प्राण	असत्	समाधि
३	आकाश	श्रद्धा	आकाश	श्रद्धा	श्रद्धा	असत्	आभूति
४	वायु	आकाश	वायु	आकाश	आकाश	सत्	सम्भूति
५	ज्योति	वायु	अग्नि	वायु	वायु	वाक्	भूत
६	जल	अग्नि	जल	अग्नि	अग्नि	मनः	सर्व
७	पृथिवी	जल	पृथिवी	जल	जल	मनः	रूप
८	इन्द्रिय	पृथिवी	इन्द्रिय	पृथिव	पृथिवी	वाक्	अपराजित
९	मन	इन्द्रिय	मन	इ न्द्रय	इन्द्रिय	चक्षु	श्री
१०	अन्न	मन	अन्न	मन (ज्ञान)	मन (ज्ञान)	श्रोत्र	यशः
११	वीय	अन्न	वीय	अन्न	अन्न	श्रोत्र	नाम
१२	तप	वीर्य	तप	वीर्य	वीर्य।	चक्षुः	अग्र
१३	मन्त्र	तप	मन्त्र	तप	तप	श्रद्धा	सजात
१४	कर्म	मन्त्र	कर्म	मन्त्र	मन्त्र	तपः	पयः
१५	लोक	लोक	लोक	कम	कर्म लोक	तपः	महीयस्
१६	नाम	ना म	नाम	नाम	लोकों में नाम	श्रद्धा	रस

उपर्युक्त चित्र में देखने से यह स्पष्ट होता है कि

'षोडशी' कहाता है। जो भक्त योगिराज इनका प्रयोग करता, धारण करता है वह भी षोडशी (१६ कला वाला) कवियों द्वारा वर्णित किया गया है। लोगों ने भ्रम से उसे विष्णु का अवतार बना दिया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इन १६ कलाओं का वर्णन १. आर्याभिविनय, २. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (वेद विषय विचार) ३. यजुर्वेद भाष्य (८.३६ तथा ३२.५) में किया है। यजुर्वेद भाष्य (३२.५) 'ईक्षण' के स्थान पर 'लोक' शब्द मिलता है। लोकृ दर्शने धातु से बने लोक शब्द का अर्थ दर्शन=ईक्षण भी है। उनकी आगे तालिका प्रस्तुत की जाती है—

(१) यजुर्वेद-भाष्य (३२।५) तथा प्रश्नोपनिषद् की १६ कलाओं में कोई भेद नहीं है।

(२) जैमिनि उपनिषद् की दोनों स्थानों की १६ कलाओं में प्रश्नोपनिषद् से भिन्नता है।

(३) केनोपनिषद् में प्राण से पूर्व 'दक्षिण' का निर्देश तो अवश्य है, किन्तु उसकी १६ कलाओं में गणना नहीं है।

[४] य० भा० [८।३६], ऋ० भा० भू० तथा आर्याभिनय में प्राण से पूर्व इच्छ व ईक्षिण का समान रूप में निर्देश मिलता है परंतु इच्छा व ईक्षिण की वृद्धि होने से १६ संख्या की पूर्त्ति के लिए य० भा० ८।३६ में कर्म को और ऋ० भा० भू० में लोक को छोड़ा है।

[५] आर्याभिविनय में लोक तथा लोकों के नाम को इकठ्ठा ही पढ़ा गया है, ऐसा प्रतीत होता है। अन्यथा एक संख्या की वृद्धि होने से १६ संख्या की पूर्ति न हो सके।

[६] और ऋषि दयानन्द के समस्त ग्रन्थों में कुछ भेद के साथ पर्याप्त समानता है।

१. श्रीकृष्ण में अद्भुत 'ईक्षिण' [निरीक्षण] तथा लोक दर्शन की शक्ति थी। कौन, कहाँ, क्या कर रहा है, कब, किसको क्या करना चाहिए इसका ध्यान रहता था।

२. उनमें 'प्राण' शक्ति अत्यन्त प्रबल थी। वे प्राणायाम योग किया करते थे।

३. उन में वेद शास्त्रों, ईश्वर धर्म, गुरुओं के प्रति अटूट 'श्रद्धा' थी।

४. ५. वे 'आकाश' में वायुयान से विचरण करते थे।

६. वे अग्नि विद्या जानते थे और अग्निहोत्र करते थे।

७. वे जल में तैरना जानते थे। यमुना और समुद्र तट पर निवास करते थे, जलक्रीड़ा करते और जल पोतों का संचालन करते थे।

८. वे पृथ्वी पर मल्ल विद्या का अभ्यास करते थे। पृथ्वी के राजा उनको पूज्य समझते थे।

९. वे इन्द्रियों के विजेता थे। उनका ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और मन पर संयम था।

१०. वे 'मन' को वश में कर ज्ञान पूर्वक कार्य किया करते थे।

११. वे 'अन्न' का उत्पादन और सदुपयोग किया करते थे।

१२. वे 'वीर्य' की रक्षा करने वाले ब्रह्मचारी थे। केवल एक रुक्मिनी के साथ विवाह कर केवल एक ही सन्तान उत्पन्न की।

१३. वे 'तपः' करने वाले, धर्म के लिए कष्ट सहने वाले तपस्वी थे।

१४. वे 'मन्त्रों' को जानते थे, ज्ञानपूर्वक गुप्त भाषण में चतुर थे।

१५. वे सदा 'कर्म'-निष्ठ होकर कार्य करते थे, सुकर्म ही करते थे, सच्चे कर्मयोगी थे, अकर्मी रहकर निष्कर्म (निकम्मे) नहीं रहे। उनका प्रेरक वेद मन्त्र था—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
(ईश उपनिषद् मन्त्र २। यजु० ४०.२)

गीता में उनका सिद्धान्त निम्नलिखित है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूः, मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

१६. उनका 'नाम' कृष्ण (आकर्षक तथा श्याम वर्ण) यथार्थ था। उन्होंने तत्कालीन जनता को आकर्षित किया, आज भी हम सभी को आकर्षित कर रहे हैं। इन्हीं १६ गुणों के कारण उन्हें षोडश कलावतार कहा गया। जे०उ० ब्राह्मण की १६ कलाओं के अनुसार वे सत्-असत् के विवेचक, वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र को वश में रखने वाले थे। उनमें तप और श्रद्धापूर्ण थी, वे भद्र (कल्याणकारी) हाथ के लिये कार्य की समाप्ति करने वाले, आभूति सम्भूति, युक्त, भूत मात्र के हितैषी, सर्व (सहस्र) कार्य करने की शक्ति वाले, रूपवान, अपरिमित श्री यश रखने वाले, समान रूप से प्राणियों के लिए दूध के समान शीतल, रस युक्त वाणी वाले महापुरुष थे। इसीलिये उन्हें १६ कला महापुरुष कहा गया है।

सदा विजेता धर्मरक्षक श्रीकृष्ण

(प्रा० भद्रसेन, साधु आश्रम, होशियारपुर)

'दयानन्द सन्देश' का यह विशेषांक जन्माष्मी के शुभ अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। यह पावन पर्व योगेश्वर श्री कृष्ण की स्मृति में मनाया जाता है। श्री कृष्ण को भगवान मानने वाले भी इस शुभ अवसर को जन्माष्टमी के रूप में स्मरण करते हैं। जिसका सीधा-सा भाव है, कि उस महान आत्मा ने इस तिथि को भारत की पुण्यधरा पर जन्म लिया था। उन्होंने भी अन्यों की तरह अपनी बाल-सुलभ क्रिड़ाओं से परिजनों को प्रमोदित किया और सान्दीपनि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की। यथा समय कंस की क्रूरता को समाप्त किया, जरासन्ध के अन्याय अत्याचार को जड़ से उखाड़ा और द्वारिका में अपने राज्य की स्थापना की। सबसे बढ़कर पाण्डवों को कौरवों की क्रूरता से बचाने के लिए उनके सर्वस्व बने।

ये सारी घटनायें श्री कृष्ण की महत्ता को दर्शाती हैं, कि उन्होंने किस प्रकार विपरीत परिस्थितियों में भी अन्याय से जूझते हुए इस गौरव को प्राप्त किया। जन्माष्टमी का जन्म शब्द जन्म से जुड़ी हुई सभी बातों की ओर स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करता है। माता-पिता शरीर उसकी क्रमशः परिवर्तनशील स्थिति—आवश्यकतायें आदि। जबकि ईश्वर को मानने वाले सभी के सभी[1] ईश्वर को इन स्थितियों से

१। [क] स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। (ईशावास्योप: ८, यजु० ४०,८)

[ख] क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥ [योगदर्शन १, २४]

[ग] अशरीरं ईश्वरः॥ [कठ २, १६]

[घ] यत्तददेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षु: श्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययम्॥ [मुण्डक उप २, १, ६]

[ङ] अपाणिपादः॥ [श्वेताश्वतर-३, १८] नित्यो नित्यानाम् [श्वेताश्वतर-६, १३]

मुक्त मानते हैं तथा उसको अज, अजन्मा, नित्य एवं निर्विकार मानते हैं।

इससे स्पष्ट है श्री कृष्ण का जन्म होने से वे ईश्वर के अवतार नहीं थे। योगेश्वर श्री कृष्ण की यशोगाथा के स्मरण के साथ ही उनके जीवन के अनेक पहलू एकदम हमारे सामने उजागर हो जाते हैं। इसीलिए उनको षोडश कलावतार कहा जाता है। श्री कृष्ण के चमत्कारी रूप को छोड़कर जब हम केवल उनको ऐतिहासिक रूप पर विचार करते हैं, तो उनके जीवन के अनेक स्मरणीय पहलू सामने आते हैं।

आज से पाँच हजार दो सौ चौदह वर्ष कंस के कारागार में भाद्रपद की अष्टमी को श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। परिस्थितिवश श्रीकृष्ण ने जहाँ वसुदेव देवकी के स्नेह से दूर अपनी शिशु मुस्कानों और चपलताओं से नन्द एवं यशोदा के मन को आनन्दित किया। तभी तो यशोदा नन्दन के नाम से स्मरण किया जाता है। कुछ बड़ा होने पर अपने बाल सखा गोपों के साथ गौओं को चराते हुए अपने गोपाल नाम को चरितार्थ किया। सुदामा आदि के साथ सान्दीपनि के आश्रम में विधिवत् विविध शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके अपने शिष्यपन को साकार किया। गीताज्ञान आज भी उनके विविध शास्त्रीय वैदुष्य को प्रतिष्ठापित करता है। स्नातक बन जाने के पश्चात् गोकुल में आकर गोकुलवासियों का जहाँ नेतृत्व आरम्भ किया, वहाँ धीरे-धीरे कंस के अन्याय-अत्याचार से टक्कर लेनी शुरू की। गोकुलवासियों को संगठित एवं शक्तिशाली बना कर जहाँ कंस के क्रूर कर्मचारियों को ठिकाने लगाया, वहां एक दिन मल्लयुद्ध में केवल कंस के चाणूर और मुश्टि पहलवानों को भी पछाड़ा और कंस की हत्या करके कंस की क्रूरता से सभी को जहाँ मुक्ति दिलाई, वहाँ अपने माता-पिता को भी कारागृह से मुक्त किया। सब कुछ करने पर भी स्वयं कंस के राज्य को नहीं सम्भाला, अपितु उसके 'उग्रसेन' पिता को राज्य पर अभिषिक्त करके अपनी निरभिमानता और त्यागवृत्ति का परिचय दिया।

अपने जामाता कंस के वध का समाचार सुनकर जरासन्ध ने क्रोध-वश आक्रमण किया। प्रथम तो एक वीर योद्धा की तरह श्रीकृष्ण ने गोकुल-वासियों के साथ मुंह तोड़ उत्तर दिया। केवल अपने कारण ही जरासन्ध के बार-बार आक्रमणों को अनुभव करके श्रीकृष्ण ने दूरदर्शिता पूर्वक गोकुल को विनाश से बचाने के लिए स्वयं वहाँ से सपरिजन द्वारिका प्रस्थान किया और वहाँ जाकर अपने राज्य की स्थापना की। एक आदर्श

राजा के रूप में राज्य का संचालन करके एक उदाहरण उपस्थित किया। सुदामा के साथ एक सच्चे मित्र के रूप में व्यवहार करते हुए जहाँ हम श्रीकृष्ण को देखते हैं, वहाँ पाण्डवों के राजसूय में श्रीकृष्ण एक सेवक की तरह अभ्यागतों की सेवा करते हुए मिलते हैं, तो वहीं श्री भीष्म पितामह बड़े गौरव से अग्रज पूजा के लिए श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तुत करते हैं।[1] इस अवसर पर क्रुद्ध शिशुपाल भरी सभा में जब गालियों की बौछार करता हो, तो प्रथम, बड़े धैर्य के साथ जहाँ उसको सहते हैं वहाँ समझने पर भी जब शिशुपाल अपनी उदण्डता से रुकता नहीं, तो एक वीर की तरह उसे उसके कुकर्म का दण्ड भी देते हैं।

महाभारत के युद्ध को प्रथम हर तरह से टालने के लिए स्वयं संधि प्रस्ताव लेकर श्रीकृष्ण जाते हैं। पर जब दुर्योधन के दुराग्रह के कारण युद्ध अनिवार्य हो जाता है तो युद्ध से विमुख नहीं होते। युद्धभूमि में हथियार डालने वाले अर्जुन को अपने ओजस्वी वचनों से उत्साहित करते हैं और उनके उपदेश से प्रभावित अर्जुन कह उठता है—"**करिष्ये वचनं तव।**" महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण अर्जुन के केवल सारथी ही नहीं बनते, अपितु पांडवों की ओर से स्वयं सारे युद्ध का संचालन करते हैं। एक दो बार ही नहीं अपितु अनेक बार पाण्डव श्रीकृष्ण की राजनीति से ही संकट से त्राण एवं विजय प्राप्त करते हैं। इन्हीं प्रसंगों में आप का योगेश्वर नाम अधिक सार्थक सिद्ध होता है। योग=राजनीति के जोड़-तोड़ में जितनी निपुणता श्रीकृष्ण ने दर्शाई है वह कंस, जरासन्ध, जयद्रथ, द्रोण, भीष्म, कर्ण-वध आदि के प्रकरणों से स्वतः स्पष्ट होती है।

युद्ध भूमि में निराश, हताश अर्जुन को श्रीकृष्ण ने जो महान् उपदेश दिया है, वह गीता के गायक का अमरगान आज भी हर थके हारे का आत्मसम्बल है। गीता में योग का प्रतिपादन और जीवन के अंतिम चरण में योग का अभ्यास उनके योगिराज रूप को प्रतिष्ठित करता है। श्रीकृष्ण के इन सभी कार्यों में से उनका सबसे महान् कार्य है—अन्याय, अत्याचार से लोहा लेना। वह कंस वध का प्रकरण हो या जरासन्ध के विनाश का प्रसंग या इन से बढ़-चढ़कर महाभारत के विकराल युद्ध का अध्याय। ये सब योगेश्वर श्रीकृष्ण की अन्याय, अत्याचार को दूर करने की निशानियां हैं। उन्होंने हर प्रकार के अन्याय, अत्याचार को न सहने का पाठ पढ़ाया

---

१. वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशेषः केशवादृते॥

तथा सदा हर तरह से धर्म पथ पर अडिग रहने की शिक्षा दी। अन्याय को न सहने की भावना और सत्य पथ पर अडिगता ये दो ऐसे पाठ हैं, जो हर क्षेत्र और काल में बदले हुए रूप में सामने आते हैं। जरूरत है कि दृढ़ निश्चय और अदम्य भावना के साथ उनका पालन किया जाये। यही जन्माष्टमी के रूप में योगेश्वर श्रीकृष्ण के प्रति सच्ची श्रद्धाँजलि हो सकती है।

महाभारतकार श्रीवेदव्यास ने प्रसंगवश योगेश्वर श्रीकृष्ण के जीवन के अनेक-विध पक्षों को उजागर किया है। वहां श्रीकृष्ण का पत्नीव्रत रूप अविस्मरणीय है, एक विवाहित व्यक्ति कितने संयम का पालन करता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रद्युम्न प्रत्येक प्रकार से श्रीकृष्ण का प्रतिमूर्त सिद्ध होता है।[1] योगेश्वर की षोडशकला सम्पन्नता के कारण ही उनको भारतीय साहित्य एवं इतिहास में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ। योगेश्वर ने अपने जीवन के क्रियात्मक माध्यम से जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत किया है। इस पर्व पर उनसे प्रेरणा प्राप्त करके ही उनके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धाँजलि दी जा सकती है।

---

१. समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनतकुमार तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः
सौप्तिक-१२/३०

शान्तिप्रिय श्रीकृष्ण

(उदयवीर शास्त्री, गाजियाबाद)

पत्रकारिता तथा आर्यजगत् में महाशय कृष्ण से कौन परिचित नहीं है ? वे लेखनी के धनी एवं निर्भीक लेखक थे। मैं मेरठ निवासी अपने मित्र रायबहादुर के साथ ज्वालापुर में ठहरा हुआ था । उन्हीं दिनों गुरुकुल काँगड़ी का महोत्सव था । हम दोनों प्रातः ही ज्वालापुर से घमते फिरते गुरुकुल काँगड़ी के उत्सव पर जा रहे थे । जैसे ही पंडाल के समीप पहुंचे कि महाशय कृष्ण कुछ व्यक्तियों से बातें करते दिखाई दिये । परस्पर नमस्ते के बाद महाशय जी फिर अपनी बातों में लग गये । बातचीत का विषय गुरुकुल काँगड़ी की व्यवस्था सम्बन्धी था । मैं तो बातचीत से परिचित न होने से चुपचाप खड़ा रहा, किन्तु मेरे मित्र रायबहादुर जो उस समस्या से पूर्व परिचित थे, अतः उन्होंने महाशय कृष्ण से कहा—"महाशय जी ! आप कुछ दिनों के लिए अपने इस सुदर्शन चक्र को घुमाना छोड़ देवें तो अच्छा रहे।" साथ में खड़े एक अन्य सज्जन भी चुप न रह सके और बोले—यह कैसे हो सकता है ? द्वापर के कृष्ण जीवन भर लड़ाई-झगड़ों में लगे रहे। इनके लिए भी यह स्वाभाविक सा है। यद्यपि बात उपहास परक कही थी, किन्तु मेरे दिल में चोट लगी कि ये लोग श्रीकृष्ण को लड़ाई-झगड़ा करने वाला ही समझते हैं। उस समय तो मैं चुप होकर ही सोचता रहा, परन्तु बाद में मैंने इस विषय पर रायबहादुर जी से जो चर्चा की, उसी का सार यहां लिख रहा हूं।

प्रायः लोगों का यह विचार कि श्रीकृष्ण अपने समय का युद्धप्रिय और झगड़ालू स्वभाव का व्यक्ति था, यह केवल भगवद्गीता के प्रथम अध्याय के आधार पर यथाकथंचित् कहा जा सकता है। जबकि दोनों ओर की सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी है तब अर्जुन युद्ध से विरक्त होने की भावना व्यक्त करता है। यहां तक कह डालता है कि मैं भीख माँगकर जीवन निर्वाह करने को तैयार हूं पर अपने इन सगे सम्बन्धियों को नहीं मारूंगा। श्रीकृष्ण इस बेमौके अर्जुन के अपलाप को सुनकर चकित रह

जाता है। आज तक जिस शक्ति संचय के लिये समस्त पांडव, बल व दृढ़तापूर्वक प्रयास करते रहे हैं। आज अर्जुन यह क्या कह रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा। निश्चय ही यह मिथ्या व्यामोह से अभिभूत होकर समयोचित कथन नहीं कर रहा। उसके इस व्यामोह को गीता के दूसरे अध्याय के कतिपय प्रारम्भिक श्लोकों से ही दूर कर दिया गया है।

इस प्रसंग में वास्तविक रूप से अर्जुन युद्ध न करना चाहता हो, ऐसी कोई बात नहीं थी। उसके मिथ्या मोह को दूर करना ही श्रीकृष्ण के कथन का अभिप्राय था। पांडव युद्ध की तैयारी बहुत पहले से करते रहे। यदि अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता था तो आज तक उसने क्यों आवाज बुलन्द नहीं की। ऐसे अवसर पर क्षत्रिय का युद्ध से हटने की बात करना नितान्त अपयश व लज्जास्पद माना जाता है, ऐसी बात कहकर श्रीकृष्ण ने उसे युद्ध करने के लिए कहा। इसलिए प्रथम अध्याय के वर्णन से यह अभिप्राय निकाला जाना कि अर्जुन वस्तुतः युद्ध नहीं करना चाहता था और श्रीकृष्ण ने उसे युद्ध के लिए प्रेरित किया नितान्त असंगत है। गीता के इस अंश का उक्त अभिप्राय समझना अज्ञता का ही द्योतक कहा जा सकता है।

श्रीकृष्ण के जीवन के अन्य अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वे परस्पर भाईयों के इस युद्ध को किन्हीं भी तरीकों पर टालना चाहते थे। दुर्योधन की शक्ति उसके अनेक सहयोगी मित्रों पर आधारित थी। श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि इन सहयोगियों का योगदान युद्ध में दुर्योधन के साथ समाप्त कर दिया जाव तो संभव है यह युद्ध से विरत होने की बात सोचने लगे। इसमें सबसे पहले श्रीकृष्ण का ध्यान मगध के राजा जरासन्ध की ओर गया। यह प्रतापी, साहसी और अपने काल में शक्तिपुंज माना जाता था। दुर्योधन के सहयोगियों में यह ऊंचा स्थान रखता था। यहां बात को बढ़ाना बेकार है। केवल लक्ष्य कहने का यह है कि कोई बहाना पैदा कर श्रीकृष्ण ने भीम के सहयोग से जरासन्ध को समाप्त कर दिया। दूसरी कदम कृष्ण ने चेदी देश के राजा शिशुपाल की ओर बढ़ाया। राजसूय यज्ञ के अवसर पर साधारण सी बातों का बहाना लेकर सुदर्शन चक्र से उसकी गर्दन धड़ से अलग कर दी। इन कार्यों से भले ही कृष्ण उस समय लोगों में बदनाम हुआ हो पर अपनी बदनामी की कुछ परवाह न कर वह केवल इन सहयोगी शक्तियों के न रहने से युद्ध टल जाने की आशा रखता रहा।

अन्त में युद्ध टल लाने की स्थिति विलीन हुई सी दिखाई देने लगी। तब श्रीकृष्ण ने सोचा कि एक बार दुर्योधन से मिलकर कोई ऐसा निर्णय करने का प्रयास करना उपयुक्त होगा। जिससे युद्ध न हो और दोनों पक्ष प्रसन्न भी रहें तब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुंचे। भरे दरबार में दुर्योधन ने इस विषय में हर एक पहलू की चर्चा की। जब उसका कोई अनुकूल परिणाम दिखाई न दिया तो कृष्ण ने कहा "सम्राट् आप बने रहें, प्रशासन आपके हाथों में रहे। पांडवों के राजजनोचित जीवन निर्वाह के लिए इन्द्रप्रस्थ के आसपास प्रदेश के केवल पांच गांव उनको दे दीजिए।

इस पर दुर्योधन का उत्तर था—"आप पाँच गांव की बात कर रहे हैं। मैं सुई के नोक के बराबर भूमि भी पांडवों को बिना युद्ध के देने को तैयार नहीं हूं।

कहते हैं कि दुर्योधन उस समय कृष्ण को बन्दी बनाने की बात भी सोच रहा था। वह सोचता था कि यह "युद्ध न करो की रट लगाते फिर रहा है। जब तक युद्ध समाप्त न हो जाये, इसे बन्दी गृह में डाल दो।" पर इसका संकेत श्रीकृष्ण को मिल चुका था, वह दुर्योधन के यहां भोजन भी न करके उसी तरह गंगा पार विदुर जी की कुटिया में चला गया और उसने समझ लिया कि अब युद्ध अवश्यम्भावी है।

श्रीकृष्ण विचारने लगे कि मेरा कोई भी संपर्क इस युद्ध से न रहे, ऐसी स्थिति बन जाये तो अच्छा ही रहेगा। एक दिन वे अपने स्थान पर थे। उन्हें सूचना मिली दुर्योधन और अर्जुन आपसे मिलने के लिए आये हैं। उन्होंने कहा कि उन्हें उपयुक्त स्थानों पर विश्राम के लिए प्रबन्ध कर दिया जाये। कल प्रातःकाल उनसे मेल होगा। अगले दिन बहुत सवेरे ही उठकर दुर्योधन वहां पहुचा। उनके लिए प्रवेश की कोई मनाही नहीं थी। कहते हैं कृष्ण अभी सोये हुए थे। दुर्योधन वहां पहुंचे वहां पड़ी आसन्दी को धीरे से खींचकर सिरहाने की ओर बैठे और कृष्ण के उठने की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी ही देर बाद वहां अर्जुन ने प्रवेश किया। उसने देखा कि बड़े भाई साहब पहले ही आकर बैठे हैं। यह भी धीरे से एक आसन्दी खींचकर पाँयथ की ओर बैठ गया। थोड़ी ही देर में करवट लेते हुए श्रीकृष्ण उठ बैठे। स्वाभाविक था कि उठकर बैठने पर दुर्योधन की ओर उनकी पीठ और अर्जुन की ओर उनका मुख था। तत्काल पूछा कि इतने सवेरे कैसे ? तब अर्जुन ने अपना उद्देश्य बताया कि आप युद्ध में हमें सहयोग दें। उसी समय पीछे की ओर से आवाज आई—मैं अर्जुन से पहले हो

आकर बैठा हूं मेरा अधिकार पहले है।

कृष्ण ने मुंह मोड़कर देखा। दुविधा में थे कि अर्जुन को सहयोग का वचन दे चुका। अब क्या किया [जाये। तत्काल सोचकर उन्होंने दुर्योधन से कहा कि एक ओर मैं और दूसरी ओर मेरी समस्त यादवी सेना है। आप इनमें से किसको लेना चाहेंगे। दुर्योधन ने यादवी सेना लेना पसन्द किया। तभी अन्तिम बात श्रीकृष्ण ने कही कि मैं सदा से यह प्रयत्न करता रहा कि किसी तरह यह युद्ध टल जाये। पर इसमें सफलता प्राप्त न कर सका। अब भी मेरी यह भावना है कि मेरा युद्ध के रूप में कोई भी सहयोग न रहे। इसलिए मैं इस युद्ध में अपने हाथ से शस्त्र नहीं उठाऊंगा। उसके प्रयोग का तो प्रश्न ही नहीं रहता। इन घटनाओं से स्पष्ट होता है कि योगेश्वर श्रीकृष्ण नितांत शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। तात्कालिक समाज में इसी रूप से वे सम्माननीय रहे।

क्या श्रीकृष्ण युद्ध-लिप्सु थे ?

—यशपाल आर्यबन्धु, आर्य निवास, चन्द्र नगर, मुरादाबाद

महापुरुषों को समझने में संसार प्रायः भूल करता चला आया है, परिणाम स्वरूप महापुरुष प्रायः गलत समझे जाते रहे हैं। महामानव श्री कृष्ण इसके अपवाद नहीं। उन्हें समझने में भी संसार ने भूल की है। और उन्हें गलत समझा है। यदि यह कहें कि जितना गलत इन महापुरुष को समझा गया है, उतना संसार के किसी अन्य महापुरुष को नहीं। उनके अति उज्ज्वल, अति पावन, निष्कलंक चरित्र को आज जिस रूप में कलंकित कर प्रस्तुत किया गया है, उसे देखकर यह शंका होने लगती है कि महापुरुष तो दूर, यह कोई सामान्य पुरुष भी हो सकता है क्या ? आश्चर्य तो तब होता है कि जब हम यह देखते हैं कि ऐसा वही लोग कर रहे हैं कि जो उसे महापुरुष नहीं ईश्वर मानने के लिए अधिक उत्साह दिखाते हैं। जिस निष्कलंक एवं पावन चरित्र के लिए बंकिम बाबू ने लिखा था कि "उनके ऐसा सर्वगुणान्वित और सर्व पापरहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है। न किसी देश के इतिहास में और न किसी वाक्य में।" उसको आज क्या समझा जा रहा है ? उन्हीं के शब्दों में—"यही कि वह बचपन में चोर थे—दूध, दही, मक्खन चुराकर खाया करते थे, युवावस्था में व्यभिचारी थे और उन्होंने बहुत सी गोपियों के पातिव्रत्य धर्म को नष्ट किया प्रौढ़ावस्था में वंचक और शठ थे—उन्होंने धोखा देकर द्रोणादि के प्राण लिये।" और फिर बंकिम बाबू एक प्रश्न करते हैं कि "क्या इसी का नाम भगवत चरित्र है ?"

हम बात—बात में किसी को ईश्वर कहते रहें और फिर उस पर मनमाने आरोप लगाते रहें। यदि कोई मनुष्य वैसे कुकर्म करे तो दोषी गिना जाता है किन्तु ईश्वर करे तो कोई बात नहीं। सत्य है, समर्थ को नहीं दोष गुसाईं।

महामानव श्री कृष्ण पर एक दोष यह भी लगाया जाता है कि

वे युद्ध लिप्सु थे। अर्जुन के कायरता दिखाने पर उसे युद्ध के लिए प्रेरित करने के कारण ही प्रायः ऐसा समझा जाता है कि श्री कृष्ण युद्ध-लिप्सु थे। इसको सरिता सरीखी पत्रिका ने और भी हवा दी है। पर श्री कृष्ण पर युद्ध लिप्सु होने का लाँच्छन लगाने वाले यह भूल जाते हैं कि युद्ध तो एक मजबूरी थी। श्री कृष्ण महाराज ने युद्ध को टालने का जितना प्रयास किया उसे देखते हुए यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि श्री कृष्ण युद्ध लिप्सु थे। महाभारत के उद्योग पर्व में इसका विस्तार के साथ उल्लेख है। किन्तु महाभारत का यह पर्व गीता की अपेक्षा कम पढ़ा और सुना जाता है इसलिये श्री कृष्ण द्वारा किये गये शान्ति प्रयत्न भी लोगों के सम्मुख नहीं आ पाते। विपरीत इसके गीता का अधिक प्रचार होने से युद्ध की प्रेरणा का प्रसंग अधिक प्रचार पा जाता है जिस कारण लोग केवल यह समझने लगते हैं कि श्री कृष्ण युद्ध लिप्सु थे। वास्तविकता तो यह है कि युद्ध को टालने के लिए श्री कृष्ण स्वयं दूत बनकर हस्तिनापुर गये ताकि वहाँ जाकर दुर्योधन को समझाया—बुझाया जा सके। हस्तिनापुर पहुंचने पर विदुर जी ने श्री कृष्ण से कहा कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे उपदेश का दुर्योधन पर कुछ भी प्रभाव नहीं होगा। जिस प्रकार चाण्डालों के सामने ब्राह्मणों के वचनों का कोई सत्कार नहीं होता, उसी प्रकार दुर्योधन की सभा में तुम्हारे वचनों का कोई सत्कार नहीं होगा। अतः ऐसे व्यर्थ के काम से दूर रहना ही ठीक है। श्री कृष्ण जी ने इसका जो उत्तर दिया वह इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि श्री कृष्ण युद्ध नहीं शान्ति चाहते थे। श्री कृष्ण जी ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विदुर जी से कहा कि—"दुर्योधन की दुष्टता का मुझे ज्ञान है। परन्तु सारी पृथ्वी को रुधिर से लथपथ भी नहीं देखा जा सकता। कितना रुधिरपात होने को है? कैसी भयानक आपत्ति संसार पर आयेगी, यह सोचकर विवश हो गया हूं। ऐसे समय जो मनुष्य इन करोड़ों लड़ंतों को मृत्यु के मुख से खींच ले क्या वह अत्यन्त पुण्य का भागी नहीं होगा? यह भीड़ दुर्योधन और कर्ण की लाई हुई है। इन्हें समझाऊंगा। लाख बैरी हो, आखिर अपने हैं। जो मित्र को किसी व्यसन का शिकार होता देख बचाता नहीं। वह क्रूर है। आपत्ति पड़ने पर आत्मीय को केशों से पकड़कर भी खींचने का यत्न करे तब भी मनुष्य निन्दा का पात्र नहीं होता। मैं तो कौरवों के हित को भी कहूंगा, पाण्डवों के भले की भी। यदि दुर्योधन को फिर भी शंका बनी रहे तो बनी रहे। मेरा अपना हृदय सन्तुष्ट होगा। मेरे सिर से कर्त्तव्य का

भार उतर जायेगा। फिर कोई यह न कह सकेगा कि श्री कृष्ण ने दो बान्धव दलों को लड़ते देखा और उन्हें छुड़ाया नहीं। वह चाहता तो छुड़ा सकता था। मैं चाहता तो छुड़ा सकता था। मैं चाहता हूं कि शान्ति हो जाये।" (द्रष्टव्य-शुद्ध कृष्णायन, पृष्ठ ९३-९४) इतना ही नहीं श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा कि—"यदि यह लड़ाइ छिड़ गई तो इन सारे जीवों की हत्या का भार तुम्हारे सिर पर होगा। यदि तुम्हारे पुत्र मरे तो तुम्हारा जीवन वृथा हो जायेगा। हे राजन। देश-देश के सारे राजे महाराजे लड़ाई पर कमर बाँधे तैयार हैं। इस लड़ाई में सब की बर्बादी है। इसमें न छोटा बचेगा न बड़ा, इसलिये हम पर दया करो और लड़ाई बन्द करो, नहीं तो लहू की नदी बह निकलेगी और सारे भारतवासी इसमें डूब जायेंगे।" (वही, पृष्ठ ९४)

हस्तिनापुर जाने से पूर्व आप्त पुरुष श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर को सुस्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि—"मैं आपके प्रयोजन को सिद्ध करने के निमित्त कौरवों की सभा में आऊंगा। वहाँ पर आपके अभिलाषित विषय को स्थिर रखकर यदि शाँन्ति स्थापित कर सकूंगा तो मेरा महा-फल से युक्त बहुत बड़े पुण्य कर्म का अनुष्ठान सफल हो जायेगा। **संधि करने से कौरव, पाँडवों तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों और समस्त पृथ्वी के राजाओं तथा मनुष्यों को मृत्यु के मुंह से मुक्त करूंगा।**" इस पर डा० भवानी लाल भारतीय ठीक ही लिखते हैं कि—"इससे अधिक स्पष्ट कथन और क्या हो सकता है ? कृष्ण संधि कराकर मनुष्य जाति को मृत्यु के मुख से बचाना चाहते थे। इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है कि संधि के लिए इतना घोरतम प्रयत्न करने वाला व्यक्ति ही युद्ध का मूल कारण समझा जाय।" [श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ १६७]

तात्पर्य यह कि श्री कृष्ण जी ने शाँति के लिए अनथक प्रयत्न किया। उनके प्रयत्नों पर किसी प्रकार की शंका का कहीं भी कोई अव-काश नहीं। यहाँ तक की अपनी बन्दी बनाये जाने अथवा मारे जाने की चिन्ता न कर श्री कृष्ण इस महान कार्य को करने के लिए समुद्यत हुए। वहाँ उनके साथ किस प्रकार का कैसा व्यवहार हुआ यह अलग विषय है जब बहुत समझाने बुझाने पर भी दुर्योधन नहीं माना और उसने दो टूक उत्तर दे दिया कि सूई की नोंक के बराबर भी भूमि देने को तयार नहीं तो फिर अन्याय को सहन करना भी क्षत्रिय के लिए पाप है। अतः उस पाप से बचने के लिए एवं पाण्डवों को न्याय दिलाने के लिए

अपने पूर्ण प्रयत्नों के विफल हो जाने के पश्चात् नीति—निपुण श्रीकृष्ण के सम्मुख युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं रह गया था। फिर भी वे स्वयं को इस युद्ध में सर्वथा तटस्थ रखना चाहते थे। उन्होंने पाण्डवों को भी यह स्पष्ट कह दिया था कि मैं इस युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊंगा और अपनी सेना भी कौरवों को द डाली। यह सब इसलिए कि पाण्डव ही कहीं संतोष कर लें और युद्ध न करें। पर जब युद्ध गले पड़ ही गया तो फिर उससे मुख मोड़ना क्षात्रधर्म के सर्वथा विपरीत कृत्य कहा जायेगा। ऐसी स्थिति में अर्जुन का मोह करना क्षात्रधर्म के विपरीत, उसे कलंकित करने वाला कृत्य था। इस से अर्जुन का अपयश फैल सकता था। ऐसी स्थिति में अर्जुन का मोह भंग करना भी कर्त्तव्य कर्म था और श्रीकृष्ण जी ने यही किया। इससे उनकी शान्ति-प्रियता पर कोई आंच नहीं आती। यदि वे युद्धलिप्सु होते तो प्रारम्भ से ही उनका विश्वास युद्ध की अनिवार्यता में होता जबकि हम उन्हें युद्ध के प्रति सर्वथा उदासीन अथवा वैराग्यवान् पाते हैं। युद्ध को तो उन्होंने अपरिहार्य अन्तिम रूप में स्वीकार किया था। पर जब युद्ध गले पड़ ही जाये तो फिर उससे पलायन करना क्षत्रिय का धर्म नहीं। अर्जुन मोहवश युद्ध से मुंह मोड़ रहा था। तब एक क्षत्रिय को उसके कर्त्तव्य की याद दिलाना कोई बुरा कार्य नहीं अपितु कर्त्तव्य कर्म है। श्रीकृष्ण ने यही तो किया था फिर वे युद्ध—लिप्सु क्योंकर हो सकते हैं ? हमारा विश्वास है कि महाभारत में उनकी भूमिका को ठीक से न समझने के कारण ही लोग प्रायः उन्हें युद्ध का मूल कारण अथवा युद्धलिप्सु कह दिया करते हैं। हम डा॰ भवानी लाल भारतीय के इस निष्कर्ष से पूर्णतया सहमत हैं कि—"श्री कृष्ण चरित्र विषयक एक और भ्रान्ति है जिसने लोगों के मस्तिष्क में जड़ जमा रखी है और जिसके फलस्वरूप लोग श्रीकृष्ण को धोखेबाज, कपटी, युद्धलिप्सु और महाभारत के भीषण नरसंहार का मूल कारण समझने की भयंकर भूल कर बैठते हैं। इस भ्रांति का कारण महाभारत की घटनाओ को प्रकरणानुकूल न समझना ही है। श्रीकृष्ण की शान्ति—प्रियता, विश्व-बंधुत्व की भावना और युद्ध के प्रति सहज विराग की भावना लोगों से विस्मृत हो चुकी है। उन्हें यह पता नहीं कि श्रीकृष्ण युद्ध की अनिवार्यता में विश्वास नहीं करते थे अपितु इसे वे अपरिहार्य परिस्थिति में अन्तिम साधन के रूप में ही स्वीकार करने के लिए तभी उद्यत होते थे जबकि समझौते के सभी साधन व्यर्थ हो जाएं श्रीकृष्ण के लोक पावन, मंगलकारी चरित्र की यह निकृष्ट व्याख्या है कि उन्हें धूर्तताभरी चालों वाला कपटी

राजनीतिक समझा जाये। इन्हीं भ्रममूलक धारणाओं के कारण आज श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप अंधकारमय हो रहा है और हम उसकी कल्याणकारी वृत्तियों को हृदयंगम करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं।" (श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ १४) आज आवश्यकता इस बात की है कि श्रीकृष्ण को ठीक से समझा जाये। दूषित मनोवृत्ति और गलत दृष्टिकोण से हम श्रीकृष्ण के यथार्थ स्वरूप को कदापि नहीं समझ सकते। प्रभु करे कि हम अपने महापुरुषों को ठीक से समझने में सफल हो सकें।

इत्योम् शम्

श्रीकृष्ण शान्ति प्रिय थे, युयुत्सु नहीं

राजवीर शास्त्री

मोहवश युद्ध के विमुख अर्जुन को क्षत्रिय के धर्मों का बोध कराकर जो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्धार्थ उद्यत किया, ऐसा लोकप्रसिद्ध गीता में पढ़कर अथवा सुनकर जनसामान्य की धारणा बन गई है कि श्रीकृष्ण युद्धप्रिय थे, यदि वे चाहते तो युद्ध को रोका जा सकता था। परन्तु महाभारत के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण ने यथाशक्ति युद्ध को रोकने के ही प्रयास किये थे। युद्ध तो अन्त में विवशता में ही करना पड़ा। इस विषय में महाभारत के कतिपय प्रसंग पढ़िये—

१. पाण्डवों के वनवास का समय पूरा होने पर राजा धृतराष्ट्र ने संजय को पाण्डवों के पास इस लिये भेजा कि वह पाण्डवों के अभाव का पता लगावे। संजय ने प्रथम धर्मराज युधिष्ठिर से बातचीत की, उस समय युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की तरफ इशारा करके कहा—क्योंकि "श्रीकृष्ण दोनों पक्षों के हितचिन्तक[1] हैं, अतः उनके विचार इस विषय में जानने चाहियें।"

२. श्रीकृष्ण की संजय को चेतावनी "हे सूत![2] मेरी सदा यही अभिलाषा रही है कि दोनों पक्षों में शान्ति बनी रहे। इसलिये हे कुन्ती-कुमारो! तुम कौरवों से सन्धि करो, उनके प्रति शान्त बने रहो। इसके सिवाय पाण्डवों के समक्ष दूसरी बात मैं कोई भी नहीं कहता हूं।"

३. श्रीकृष्ण संजय को अपने हृदय का स्पष्टीकरण करते हुए पुनः कहते हैं—"हे संजय![3] यदि पाण्डवों का धर्मपूर्वक राज्य का भाग नष्ट

---

१. महायशाः केशवस्तद्ब्रवीतु, वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः॥ (म० उद्योग० २८।१०)

२. कामो हि मे संजय नित्यमेव नान्यद् ब्रूयां तान् प्रति शाम्यतेति (म० ३०२९।२)

३. अहापयित्वा यदि पाण्डवार्थं शमं कुरूणामपि चेच्छकेयम्।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महोदयं मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात्॥
(म० उ० २९।४८)

किये बिना मैं कौरवों के साथ इनकी सन्धि कराने में सफल हो सका, तो मेरे द्वारा यह परम पवित्र और महान् अभ्युदय का कार्य सम्पन्न हो जायगा तथा कौरव भी मौत के फन्दे से छूट जायेंगे।"

४. श्रीकृष्ण दूतरूप में जाने का उद्देश्य समझाते हुए युधिष्ठिर से कहते—"हे युधिष्ठिर! आपके लाभ में किसी प्रकार की बाधा न पहुंचाते हुए यदि मैं कौरवों के पास जाकर दोनों पक्षों में सन्धि करा सका, तो मैं यह समझूंगा कि मेरे द्वारा यह महान् फलदायक और बहुत बड़ा पुण्य[1] का कार्य सम्पन्न हो जायेगा।

धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन कितना पापी है, यह मैं जानता हूं। फिर भी कौरवों के पास दूत रूप में इसलिये जा रहा हूं कि दोनों पक्षों में सन्धि होने से संसार के क्षत्रियों की दृष्टि में हम निन्दा के पात्र[2] न बनें।

५. दूत रूप में श्रीकृष्ण का कौरव सभा में भाषण का सार—

हे धृतराष्ट्र! मैं आपसे यह प्रार्थना करने आया हूं कि क्षत्रियवीरों का संहार हुए बिना ही कौरवों और पाण्डवों के मध्य शान्ति स्थापित हो जाये। इस समय समस्त क्षत्रियों में यह कुरुवंश ही सर्वश्रेष्ठ है और इसमें यदि आपके कारण कोई धर्मविरुद्ध कार्य हो तो यह उचित नहीं है। हे कुरु श्रेष्ठ! इस समय कौरवों पर अतीव भयंकर आपत्ति आई हुई है, यदि अब भी उपेक्षा की गई तो समस्त भूमण्डल का विध्वंस हो जायेगा। हे भारत! यदि आप चाहें तो यह भयानक विपत्ति दूर की जा सकती है। और दोनों पक्षों को समझा कर सन्धि कराना कोई कठिन कार्य नहीं है। दोनों पक्षों में सन्धि कराना आपके तथा मेरे आधीन है। आप अपने पुत्रों को मर्यादा में रखिये और मैं पाण्डवों को नियन्त्रण में रखता हूं। आप थोड़ा यह भी विचार कर कि इस युद्ध के परिणाम कैसे होंगे? मुझे तो इस युद्ध में दोनों पक्षों का निश्चित विनाश दिखाई दे रहा है। हे कुरुश्रेष्ठ! जिससे इन समस्त क्षत्रिय वीर पुरुषों का तथा प्रजा का नाश न होवे, ऐसा कोई उपाय विचारिये। आप वयोवृद्ध हैं, आप पाण्डवों पर भी

---

१. शमं तत्र लभेय चेद् युष्मदर्थमहापयन्।
पुण्यं मे सुमहद् राजंश्चरितं स्यान्महाफलम्॥
(म० उ०) ७२।८०)

२. जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम्।
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम्॥ (म० ३०७२।८५)

वैसा ही स्नेह बनाए रखें, जैसा पहले था। पितृहीन इन पाण्डवों को आपने ही बचपन से पालपोसकर बड़ा किया है, अब भी न्यायपूर्वक उनका भाग देकर शान्ति करने में सहायक बनें। ये पाण्डव आपको ज्येष्ठ पिता मानते हैं, इसी लिये अपनी प्रतिज्ञा पर रहकर १२ वर्षों तक जंगलों में भटकते रहे और एक-एक वर्ष अज्ञात वास में भी बिताया है। आप भी अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहकर उनका राज्य का भाग लौटा देवें। शिष्यों को कुमार्ग से रोकने का कार्य गुरु करता है, वैसे पिता पुत्रों को भी रोकता है। आप धर्मज्ञ तथा न्यायप्रिय राजा हैं आपके समक्ष यदि अन्याय होता है, तो उससे आपका अपयश ही होगा। हे भारत ? मैं तो आपका और पाण्डवों का भी कल्याण ही चाहता हूँ। आप समस्त प्रजा को धर्म, अर्थ और सुखों से वञ्चित न करें। यह समस्त उपदेश महा० उद्यो० प० ९६ वें अध्याय में है। जिसके अन्त में श्रीकृष्ण ने यह कहकर अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की है—

"अहंतु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत।"

६. धृतराष्ट्र की प्रार्थना पर दुर्योधन को समझाना—श्रीकृष्ण के भाषण पर समस्त राजा मुग्ध हो गये और उन्होंने शान्ति की आशा से सुख का सांस लिया। तत्पश्चात श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र की प्रार्थना पर दुर्योधन को भी इस प्रकार समझाया—

हे दुर्योधन ! मैं तुम्हारे कल्याण की भावना से ही दूत बनकर आया हूँ। तुम्हारा जन्म एक ऊँचे क्षत्रिय कुल में हुआ है, किन्तु तुम जो कर्म कर रहे हो वे तुम्हारे योग्य नहीं हैं। ऐसे निकृष्ट कर्मों को तो नीच कुलों में उत्पन्न पामर जन ही किया करते हैं। हे भरत श्रेष्ठ ! तुम शूरवीर मनस्वी एवं ज्ञानी हो तुम्हें अपना हिताहित सब सोचना चाहिये। और अपने हितचिन्तक विदुर, पितामह भीष्म, तथा पिता धृतराष्ट्र की बातों पर ध्यान देना चाहिये। यदि तुम अपने दुराग्रह को छोड़कर पाण्डवों से सन्धि कर लोगे तो एक बहुत बड़ी आपत्ति टल सकती है। अन्यथा बाद में पश्चात्ताप ही करना होगा।

हे भरत श्रेष्ठ ! इस समय तुम्हारे जो सलाह देने वाले हैं, वे तुम्हारे हितैषी नहीं हैं। तुमने धर्मात्मा एवं वीर पाण्डवों के साथ सदा ही शठता पूर्ण व्यवहार किये हैं। किन्तु तुम्हें यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि जो धर्मात्मा पुरुषों के साथ सद्व्यवहार नहीं करता, वह कुल्हाड़ी से वन की भांति अपने आपको ही काट देता है। यदि तुम पाण्डवों के साथ सन्धि

करके प्रेम से रहोगे, तो तुम्हारे सभी मनोरथ पूरे हो जायेंगे ।

हे भरतनन्दन ! साथ ही तुम्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पाण्डव तुम्हारे से निर्बल नहीं हैं। कभी तुम यह सोचते हो कि पाण्डवों ने हार के भय से ही सन्धि का प्रस्ताव रखा है। तुम्हारे पास जितने भी योद्धा हैं, उनके लिये वीर अर्जुन ही पर्याप्त है। क्या तुमने विराट् नगर में अर्जुन के द्वारा परास्त भीष्मादि की दशा पर थोड़ा भी विचार नहीं किया ? मैं अर्जुन का सारथी हूँ, मेरे साथ होने पर तो अर्जुन को कौन हरा सकता है ? इसलिये पूर्वापर भलीभांति विचार कर देखो, कि तुम भयंकर नरसंहार के कारण क्यों बनना चाहते हो ? मेरी तो यही इच्छा है—

अस्तु शेषं कौरवाणां मा परा भूदिद कुलम् ।
कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥ (म० उ० १२४ अ०)

हे नरेश्वर ! कौरववंश बचा रहे, इस कुल का पराभव न हो, और तुम भी अपनी कीर्त्ति का नाश करके कुलघाती न कहलाओ। इसलिए पाण्डवों से सन्धि करो, ये धर्मात्मा पाण्डव तुम्हें ही युवराज पद पर स्थापित कर देंगे, यह निश्चित जानो। तुम अपने घर में आई हुई राज्य लक्ष्मी का अपमान मत करो और पाण्डवों का आधा राज्य सौंपकर सुख पूर्वक राज्य का भोग करो।

७. विदुर की धृतराष्ट्र के लिये सलाह—

हे कुरुराज ! आप अब वृद्धावस्था में हो, अब तक आप पर प्रजा का यह विश्वास है कि आप धर्मात्मा हैं। किन्तु अपने पुत्र की मूर्खतावश सर्वनाश के लिये उद्यत हो गये हो। यह आपके लिये शोभा नहीं देता और दूत रूप में शान्तिस्थापनार्थ आये श्रीकृष्ण को जो मूल्यवान् वस्तुयें भेंटकर रहे हो, यह एक प्रवञ्चना ही है। क्योंकि पाण्डव शान्ति की कामना से ही अपना पैतृक राज्य भी न मांगकर पांच गांव ही तो मांग रहे हैं। किन्तु आप पाण्डवों की तुच्छ मांग को भी स्वीकार नहीं कर रहे हैं, इससे स्पष्ट है कि आप शान्ति नहीं चाहते। मेरा तो परामर्श यही है कि आप श्रीकृष्ण के सन्देश को स्वीकार कर लेवें। क्योंकि श्रीकृष्ण तो—

शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च ॥ म० उद्योग ८८।१६ ।
येनैव राजन्नर्थेन तदेवास्मा उपाकुरु ॥ म० उ० ८८।१५ ॥

हे राजन् ! पूजार्ह श्रीकृष्ण तो उभयपक्ष में शान्ति-स्थापनार्थ ही यहां आये हैं। वे तेरा और दुर्योधन का भी कल्याण चाहते हैं। उन्हें धन

नहीं चाहिये, इन्हें तो अपने उद्देश्य की सफलता चाहिये, आप उसके अनुरूप ही उन्हें उपहार देने का प्रयत्न करें।

८. स्वयं श्रीकृष्ण के द्वारा ही अपना उद्देश्य बताना—जिस समय श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन को समझाने के लिये जाने लगे, उस समय श्रीकृष्ण की कैसी पवित्र भावना थी और वे क्या उद्देश्य लेकर गये थे, यह उनके शब्दों से ही जाना जा सकता है। कौरवों के पास जाकर दुर्योधन की जिद तथा अच्छी सलाह को न मानने पर तो कुछ अन्यथा विचार होना दूसरी बात थी किन्तु उससे प्रथम भी श्रीकृष्ण की भावना शान्ति स्थापना की ही थी। देखिये—

धर्म्यमस्मद्धितं चैव कुरूणां यदनामयम्।
एष यास्यामि राजानं धृतराष्ट्रमभीप्सया ॥ (म० उद्योग० ८३ प्र०)

श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले—हे अर्जुन! मैं धृतराष्ट्र के पास दूत बनकर इसलिए जाऊँगा कि जो धर्म-संगत एवं हमारे व कौरवों के लिए हितकर है, उसे वहाँ जाकर समझा सकूँ।

९. श्रीकृष्ण ने युद्ध की बात कब स्वीकार की ?

श्रीकृष्ण ने जब यह देखा कि भीष्म द्वारा, विदुर, गान्धारी, धृतराष्ट्र तथा मेरी, किसी की बात का भी कुलघ्न दुर्योधन पर कोई असर नही है और यह पूर्ववत् अपने दुराग्रह पर ही अडिग है, तब साम, दाम, भेद नीतियों से सफलता[1] न मिलने पर विवश होकर युद्ध की बात स्वीकार की थी। इसलिये समस्त महाभारत के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण युयुत्सु कदापि नहीं थे: वे तो बहुत निष्पक्ष, धर्मात्मा एवं शांति-प्रिय थे।

---

१. साम्यादौ प्रयुक्तं मे राजन् सौभ्रात्रमिच्छता।
अभेदायास्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥
पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते।
यदा नाद्रियते वाक्यं सामपूर्वं सुयोधनः।
तदा मया समानीय भेदिताः सर्वपार्थिवाः।
सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्चग्रामान् विसर्जय ॥
एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत।
दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा ॥
(म० उ० १५० वां अध्याय)

क्या श्रीकृष्ण ने युद्ध में अधर्म को अपनाया था ?

(प्रह्लादरायपचेरिया, ४।१७ भगवती अपार्टमेंट्स
एस०बी० रोड, मलाड (प०) बम्बई)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव आप्त पुरुषों के सदृश है। उन्होंने जन्म से मरण पर्यन्त अधर्म का कोई भी आचरण नहीं किया।" योगीराज श्रीकृष्ण कहीं के राजा भी नहीं थे परन्तु उनका मान, प्रतिष्ठा, महिमा उनको विद्वत्ता, नीतिमत्ता और महान् शक्तिमत्ता के कारण थी इसलिये पांडवों के राजसूय यज्ञ में कृष्ण को क्षत्रियों में अग्रपूजा का मान प्राप्त हुआ था। महाभारत के युद्ध में पांडवों की विजय कृष्ण को नीति के कारण ही प्राप्त हुई थी और यदि युधिष्ठिर कृष्ण के निर्देशानुसार ही आचरण करता तो पांडवों की इतनी अधिक हानि नहीं होती और न भारत की वह दुर्दशा होती जो आज हो रही है फिर भी युद्ध के वाद भारत का जो कुछ भी बचा था वह भी कृष्ण के कारण ही था।

कृष्ण के समय में भारत देश में आसुरी शक्तियां बहुत ही प्रबल थीं। कंस, जरासंध, शिशुपाल, भौमासुर और कौरवादि दुष्टों का राज्य व बोलबाला था, साधु त्रस्त थे। परन्तु ये आसुरी राज्य भी तो इच्छा अनिच्छा या विवशता के कारण "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुसार प्रजा के सहयोग और समर्थन के कारण ही तो चल रहे थे। इसलिये उन राज्यों की प्रजा भी उन पापों के लिए जो इन राज्यों द्वारा किया जा रहा था— उत्तरदायी थी और पापों का फल भोगने की पात्र थी।

ऐसा आक्षेप किया जाता रहा है कि कृष्ण ने छलकपट और झूठ का आश्रय लेकर ही पांडवों की विजय कराई थी। परन्तु आक्षेप करने वाले यह भूल जाते हैं कि धर्म के दो रूप हैं। एक है शाश्वत और दूसरा व्यवहारिक (इसमें आपद्धर्म और युद्ध धर्म भी शामिल है)। दोनों धर्म

अलग अलग हैं, इनकी आपस में तुलना भी नहीं हो सकती और न एक धर्म का प्रयोग दूसरे धर्म के स्थान पर किया जा सकता है और यदि किया गया तो अधर्म हो जाता है, अकल्याण कारक होता है। जहां तक शाश्वत धर्म का सम्बन्ध है, उस व्यक्ति को जिसने अपनी सारी आयु में अधर्म के पक्ष का ही समर्थन या हित साधन किया हो या धार्मिक पक्ष का अहित किया हो उसको जैसे भी हो मार डालना ही धर्म है। भीष्म ने भीम को विष देने वालों, समस्त पांडवों को उनकी माता सहित लाक्षागृह में जीवित ही भस्म कर देने का प्रयत्न करने वालों को क्या दण्ड दिया? भरी कौरव सभा में सबके सामने अपनी पतोहू के नग्न किये जाने के प्रयत्न का विरोध न कर दुर्योधन और कर्ण के अपकृत्यों का —'बलवान् जो करे वही धर्म है—कहकर समर्थन ही किया था, वह भीष्म धर्मात्मा था क्या? इसलिए कृष्ण ने भीष्म का वध शाश्वत धर्म के अनुसार कराया था।

जब अर्जुन भीष्म पर बाण वर्षा कर रहा था, भीष्म को अर्जुन पर बाण वर्षा करनी थी। शत्रु की भूल का या दुर्बलता का लाभ उठाना प्रत्येक योद्धा का कर्त्तव्य होता है। सत्य धर्म का व्यवहार सत्य वक्ताओं, सत्य का आचरण करने वालों के लिए होता है न कि जान-बूझकर अधर्माचरण करने वालों के लिये। इसलिये कृष्ण पर आक्षेप करना भी गलत है। घी जैसी नरम वस्तु भी सीधी ऊंगली से नहीं निकलती, अंगुली को टेढ़ा करना पड़ता है, विष की दवा विष होती है। दुष्टों के साथ भला-व्यवहार हानि-कारक ही होता है।

द्रोणाचार्य जुए के समय, द्रौपदी को नंगी किये जाने के समय सभा में उपस्थित थे परन्तु सर्वथा मूकदर्शक बने रहे अभिमन्यु के चक्रव्यूह तोड़कर बड़े-बड़े महारथियों को हराकर कौरव सेना में हाहाकार मचा देने पर, उसे घेरकर और निशस्त्र कर मार देने की द्रोणाचार्य की सलाह पर कर्ण ने पीछे से अभिमन्यु का धनुष काटकर उसे निःशस्त्र किया और फिर घायल और मूर्छित अभिमन्यु का वध किया गया, इसके लिये द्रोणाचार्य ही मुख्य रूप से उत्तरदायी थे। द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीवित ही बन्दी बनाने या फिर संपूर्ण पांडव सेना का संहार करने की प्रतिज्ञा की थी। अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए द्रोणाचार्य ने मानवता को तिलांजलि देकर अनजान निरीह सैनिकों पर दिव्यास्त्रों से आक्रमण कर उनका वध आरम्भ किया। कृष्ण ने अनुभव किया कि यह क्रूर पतित ब्राह्मण सायंकाल से पूर्व ही सारे पांडव सैनिकों का वध कर युद्ध

को कौरवों के पक्ष में समाप्त कर देगा। इसलिए कृष्ण ने योजना बनाई। द्रोणाचार्य को अश्वत्थामा के मरने की सूचना देकर उसको विचलित किया गया और अवसर देखकर धृष्टद्युम्न ने उसका सिर काट दिया। क्या अपनी सेना के निरीह सैनिकों के जीवन की रक्षा कर कृष्ण ने कुछ बुरा कार्य किया था? ब्रह्मास्त्र और दिव्यास्त्रों का अनजान सैनिकों पर प्रयोग करना सत्य ही घोर पाप था। हाँ, अर्जुन पर चलता तो ठीक था, अर्जुन उसका समुचित उत्तर दे सकता था।

यदि द्रोणाचार्य जीवित रहता और अश्वत्थामा को जीवित देख लेता तो यह निश्चय था कि दोनों क्रूर कर्मा पिता पुत्र मिलकर सारी पाडव सेना का संहार करके दम लेते। युद्ध की अन्तिम रात्रि को तो अश्वत्थामा ने सोते हुए पाँडव सेना के वीरों को इतनी क्रूरता और निष्ठुरता से मारा जिसकी संसार के इतिहास में कहीं तुलना नहीं होगी। और अन्त में अपने पापी स्वामी की मृत्यु के बाद भी पापी ने पांडवों का बीज नाश करने के लिए ब्रह्मास्त्र तक चला दिया, जिससे उत्तरा का गर्भस्थ बालक तक मृत प्रायः हो गया। श्री कृष्ण ने उसे किसी तरह जीवित कर दिया, अन्यथा पाँडवों का नाम लेवा भी इस संसार में कोई भी नहीं रहता। दुर्योधन का भीम के द्वारा गदा युद्ध में उसकी जाँघें तोड़कर वध, कर्ण का उसके रथ के पहिये के जमीन में धंसे हुए होने की अवस्था में अर्जुन के द्वारा वध करवाकर कृष्ण ने शाश्वत धर्म का ही पालन किया था। कर्ण ही महाभारत युद्ध का खलनायक था। उसी की प्रेरणा और सलाह से दुर्योधन ने पांडवों के साथ शत्रुता की थी उसी कर्ण की प्रेरणा से ही द्रौपदी को नंगी करने का प्रयास किया गया था। कर्ण यदि दुर्योधन के पक्ष में नहीं होता तो संभव है महाभारत का युद्ध जिस रूप में जिस तरह सर्व-संहारक हुआ वैसा नही होता। चाहे जैसे भी हो कृष्ण ने इन सभी पतित और दुष्ट ब्राह्मण क्षत्रियादिकों का वध करवाकर लोक कल्याण और पुण्य का ही कार्य किया था।

श्री कृष्ण पर यह भी आक्षेप किया जाता है कि समर्थ होते हुए श्री कृष्ण ने कौरव और पांडवों को युद्ध से नहीं रोका और युद्ध के कारण भयंकर नर संहार हुआ और देश को बड़ा जबर्दस्त धक्का लगा। परन्तु इस आक्षेप में कोई सार नही है। देखिए। श्री कृष्ण कहते हैं:—[विदुर जी से]

धर्मकार्य यतञ्छक्त्या नो चेत् प्राप्नोति मानवः।
प्राप्तो भवति तत् पुण्यमत्र मे नास्ति संशय ॥६॥

मनुष्य यदि अपनी शक्ति भर किसी धर्मकार्य को करने का प्रयत्न करते हुए भी उसमें सफलता प्राप्त न कर सके तो भी उसे उसका पुण्य तो अवश्य ही प्राप्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है।

न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा।
शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान् कुरु पाण्डवान् १६

संसार के पापी मूढ़ और शत्रु भाव रखने वाले लोग मेरे विषय में यह न कहें कि श्री कृष्ण ने समर्थ होते हुए भी क्रोध से भरे कौरव पांडवों को युद्ध से नहीं रोका, इसलिये भी संधि कराने का प्रयत्न करूंगा।

उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत।
तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥१७॥

मैं दो पक्षों का स्वार्थ सिद्ध करने के लिये ही यहाँ आया हूं। इसके लिए पूरा प्रयत्न कर लेने पर मैं लोगों में निन्दा का पात्र नहीं बनूंगा।

अहापयन् पाण्डवार्थं यथावच्छमं कुरूणां यदि चाचरेयम्।
पुण्यं च मे स्याचरितं महात्मन्
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्यु-पाशात् ॥१८॥

महात्मन्! यदि मैं पांडवों के स्वार्थ में बाधा न आने देकर कौरवों तथा पाण्डवों के यथा योग्य संधि करा सकूंगा तो मेरे द्वारा यह महान पुण्य कार्य बन जायगा और कौरव भी मृत्यु के पाश से मुक्त हो जायेंगे। [उद्योग पर्व अध्याय ९३]

कौरवों से संधि के लिए जाते समय कृष्ण पाण्डवों से कहते हैं:—

अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः।
दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथंचन॥
॥ (उद्योग० ७९-५-५) ॥

मैं, मनुष्य से जितना हो सकता है उतना संधि स्थापन के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करूंगा परन्तु प्रारब्ध के विधान को किसी भी प्रकार से टाल देना या बदल देना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

महाभारत साक्षी है कृष्ण ने सभी सम्भव उपायों का युद्ध रोकने के लिए उपयोग किया था परन्तु दुर्योधन की हठधर्मी के कारण सफल नहीं हुए। महाभारत में कृष्ण का चरित्र जितना उज्ज्वल है उसकी समता कहीं नहीं है।

महाभारत और पुराणों के श्रीकृष्ण

(ले० डा० सत्यदेव आर्य S.B. १६१ बापू-नगर, जयपुर ३०२०१५)

श्रीकृष्ण की लोकप्रियता का कारण—

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पावनपर्व प्रतिवर्ष आता है। बड़ी ही धूमधाम से मनाया जाता है। लोग उपवास रखते हैं। घर २ झाँकियां सजाते हैं। अर्धरात्रि तक कृष्ण जन्म वेला की प्रतीक्षा करते हैं। भजन-कीर्तन करते हैं। कृष्ण जन्म की खुशियां मनाते हैं पर क्यों ? इसलिए कि श्रीकृष्ण जनजन के पूज्य हैं; अनुकरणीय आदर्श हैं।

श्रीकृष्ण चरित के प्रसिद्ध लेखक बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय लिखते हैं कि "भारत में गांव २ में कृष्ण के मन्दिर हैं। घर २ में कृष्ण की पूजा होती है। प्रतिमास कृष्ण उत्सव होता है। प्रति उत्सव में कृष्ण लीला होती है। सब के मुंह पर कृष्ण का नाम है तथा उसके गीत सुनाई देते हैं। किसी के वस्त्र पर कृष्ण नामावली होती है तो किसी के शरीर पर कृष्ण नामों की छाप। कोई कृष्ण का नाम लिए बगैर पैर बाहर नहीं रखती, कोई कृष्ण का नाम लिए बिना कुछ नहीं लिखता भिखारी 'राधाकृष्ण' का नाम लेकर भीख मांगता है तो जुआरी कृष्ण का नाम लेकर दाँव लगाता है। अभिवादन करते हैं तो भी कृष्ण का नाम लेकर यथा 'जय श्री कृष्ण' 'जय गोपाल' 'जय राधे कृष्ण' और घृणा प्रदर्शित करते हैं तब भी कृष्ण का नाम लेकर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण" आदि" हालांकि इसमें पौराणिक झलक है, फिर भी है यह वास्तविकता। कृष्ण जन जन के मानस पटल पर छाये हुए हैं, इसलिये कि वह पवित्रात्मा थे, आत्मदर्शी थे, अपूर्व आस्तिक एवं योगी थे तथा सही अर्थों में महामानव थे। उनका मानवीय व्यवहार और आप्तजनीय का कारण बना हुआ है। दूसरों के सुख दुःख को स्वात्मवत् समझने वाले, निर्बल धर्मात्माओं का सहाय और सबल अत्याचारियों का दमन करने वाले, निस्वार्थ जन-हित में सदा प्रवृत्त रहने वाले, धर्म-अधर्म के विवेक से न्यायोचित पथ प्रदर्शित करने वाले और स्वतः सत्य न्याय और धर्म का अनुपालन करने धर्मात्मा योगीराज श्रीकृष्ण में हमें उनकी सहृदयता, शूरवीरता, निर्भीकता,

निर्लेपता, नीतिमत्ता और धैर्य के दर्शन होते हैं। उनके कर्म योग बाल योग के विशिष्ट स्वरूप का बोध हमें रणभूमि में उनकी नीतिमत्ता एवं गीता की उत्कृष्ट शिक्षा में मिलता है—हालांकि गीता में भी अब तक बहुत कुछ प्रक्षेप हो चुका है। महर्षि दयानन्द ने श्रीकृष्ण को आप्त पुरुष कहा है। महर्षि लिखते हैं कि "देखो। श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं।"

महाभारत का श्रीकृष्ण धर्मरक्षक था—

श्रीकृष्ण ने बालकृत्य—श्रीकृष्ण का उत्कृष्ट व्यक्तित्व उनके बालकपन से ही प्रस्फुटित होता है। बाल्यावस्था में अरिष्ट, केशी, धेनुक आदि भयंकर जंगली जानवरों से ग्वालबाल व ग्वालों की रक्षा, गोरक्षा, अति वृष्टि से आई भीषण बाढ़ से वृन्दावन वासियों की रक्षा आदि ऐसे कई कार्य हैं जो उन्हें इस उम्र में ही नेता व त्राता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। बाढ़ से रक्षार्थ श्रीकृष्ण सभी वृन्दावन वासियों को मय पशु धन के, गोवर्धन पर्वत पर ला बसाते हैं, जहाँ एक अद्भुत चहल पहल मच जाती है। ऐसा लगता है मानो कृष्ण ने गोवर्धन को उंगलियों पर नचा दिया हो। बस इसी प्रसंग में पौराणिकों ने कृष्ण की चमत्कारिता प्रदर्शित करने हेतु उसे पर्वत को उंगली पर उठाये दिखा दिया है।

श्रीकृष्ण के लोकोत्तर कार्य—बालकपन समाप्त हुआ। श्रीकृष्ण व बलराम स्नातक बने। दुष्ट अत्याचारी मथुराधिपति कंस को मार उसके पिता उग्रसेन को कैद-मुक्त करा पुनः सिंहासनारूढ़ किया। धर्मराज्य स्थापन के उनके उद्देश्य में यह उनका प्रथम चरण था। भारत उन दिनों अनेक छोटे-२ राज्यों में बंटा हुआ था। कई राजा काफी प्रभावशाली थे। मगध का राजा जरासन्ध कंस का श्वसुर-बड़ा पराक्रमी था। लेकिन अपनी दुष्टता एवं अत्याचारिता के कारण बदनाम था। उसने लगभग ८६ राजाओं को बन्दी बना रखा था। उसकी घोषणा थी कि इनकी संख्या १०० तक हो जाने पर इन्हें मार दूंगा। कंस की मृत्यु पर जरासन्ध ने १७ बार मथुरा पर आक्रमण किये, लेकिन सभी बार उसे कृष्ण के हाथों गोरिल्ला युद्ध में मुंह की खानी पड़ी। १८ वें आक्रमण पर कृष्ण उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती सेना के साथ खपना, बुद्धिमत्ता न समझ अपने सभी यादव सैनिक-साथियों को साथ ले द्वारिका चले गये। यह उनकी

सामयिक श्रेष्ठ रणनीति थी। लेकिन युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ को सफल बनाने में पहले जरासन्ध को पराजित करना और उसके यहाँ सभी बन्दी राजाओं को छुड़ाना अत्यावश्यक था। जरासन्ध को विधिवत् युद्ध में तो हराना कठिन था, अतः श्रीकृष्ण ने एक अन्य योजना बनाई। अर्जुन व भीम को साथ ले स्नातक रूप धारण कर, जरासन्ध के यहाँ पहुंच गये। स्नातकों को मिलने की रोकटोक नहीं थी। अतः वे उसके कक्ष में जा पहुंचे। वहाँ उसे मल्ल युद्ध के लिये ललकारा। भीम से युद्ध करवाया। जरासन्ध मारा गया। सभी बन्दी राजाओं को मुक्त करा उनके निजी राज्य उन्हें लौटाये। मगध का राज्य जरासन्ध के बेटे सहदेव को सौंपा। श्रीकृष्ण की यह श्रेष्ठ नीतिमत्ता थी। इस प्रकार उन्होंने जहां दुष्ट जरासन्ध की अत्याचारिता का अन्त किया वहां मुक्त किये सभी राजाओं और मगध के राजा सहदेव को युधिष्ठिर के पक्ष में किया। धर्मराज्य स्थापन में यह उनका दूसरा चरण था।

अब राजसूय यज्ञ आयोजित हुआ। सभी राजा महाराजा सम्मिलित हुए। चेदि नरेश शिशुपाल भी। शिशुपाल जरासन्ध का सेनापति था (रुक्मिणी से विवाह करने को था। बारात लेकर विवाह मण्डप में पहुंचा, पर रुक्मिणी तो श्रीकृष्ण को चाहती थी अतः श्रीकृष्ण उसे एक दिन पहले ही अपने साथ ले आये और द्वारिका में पूर्ण वैदिक रीति से विवाह किया।) वह श्रीकृष्ण से दुश्मनी रखता था। जब अग्रपूजा का प्रश्न उठा और भीष्मपितामह ने श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तावित किया तो उसने कड़ा विरोध किया। भीष्मपितामह ने कहा कि "श्रीकृष्ण वयोवृद्ध नहीं हैं पर ज्ञानवृद्ध, बलवृद्ध एवं श्रीवृद्ध है, वेद वेदाङ्गविद् है, सत्यबल सम्पन्न हैं, इसलिये सब के आचार्य हैं, गुरु हैं।" पर शिशुपाल नहीं माना। श्रीकृष्ण को अयोग्य बताया, अपशब्द कहे, मिथ्या लांछन लगाये। यहाँ तक कि 'विवाहित नपुंसक' भी कह दिया, लेकिन 'व्यभिचारी' नहीं कह सका क्योंकि महाभारत के कृष्ण का यह चरित्र नहीं था। शिशुपाल द्वारा लगाये गये लाँछनों से श्रीकृष्ण लेशमात्र भी उत्तेजित नहीं हुए। सौम्यरूप धारण किये रहे। लेकिन शिशुपाल ने जब मल्लयुद्ध के लिये ललकारा तो श्रीकृष्ण ने उस दुष्ट का एक ही झटके में काम तमाम कर दिया। राजसूय यज्ञ शान्ति पूर्वक सम्पन्न हुआ। युधिष्ठिर महाराजाधिराज बने। धर्मराज्य स्थापन में श्रीकृष्ण की यह तीसरी कड़ी थी।

दुष्ट दुर्योधन को यह नहीं भाया। द्यूत खेल रचाया। युधिष्ठिर को हरा सारा राज्य हड़प लिया। पाण्डवों को १२ वर्ष बनवास और

एक वर्ष का अज्ञातवास दिया। वनवास की अवधि समाप्त हुई। पाण्डवों को उनका राज्य वापिस लौटाने का समय आया। दुर्योधन राजी नहीं हुआ। श्री कृष्ण ने कुशल कूटनीतिज्ञ-दूत का दायित्व सम्भाला। दुर्योधन को समझाया। धृतराष्ट्र को समझाया और अन्य सभी सम्बन्धित योद्धा परिजनों व गुरुजनों को भी। पर दुर्योधन सूई के नोंक के बराबर भी भूमि लौटाने को राजी नहीं हुआ। युद्ध के अतिरिक्त अब कोई रास्ता नहीं रहा। श्री कृष्ण ने धर्मनिष्ठ पाण्डवों का साथ दिया। निःशस्त्र रहकर पूर्ण नीतिमत्ता से युद्ध का संचालन किया। कौरवों की हार हुई। दुर्योधन मारा गया। पाण्डवों को उनका राज्य वापस मिला। भारत में चक्रवर्ती धर्मराज्य की स्थापना हुई—यही कृष्ण का उद्देश्य था सो पूरा हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि **महाभारत के श्रीकृष्ण विशुद्ध व्यक्तित्व के पुण्यात्मा, योगी, तपस्वी, ईश्वर भक्त, वेदज्ञ, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, निरहंकारी व लोक हितकारी महामानव थे।**

पौराणिक श्री कृष्ण चोर, व्यभिचारी तथा कामुक था

लेकिन पौराणिकों की दृष्टि में श्री कृष्ण के इस विशिष्ट व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं रहा। वे तो उसे गोलोक का अधिपति-ईश्वरेश्वर सिद्ध करने में ही मस्त रहे। ऐसा ईश्वरेश्वर कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि सभी उसके अनुचर बने हाथ जोड़े खड़े रहे। पर साथ ही ऐसे ईश्वरेश्वर को पुराणकारों ने पृथ्वी पर मनुष्य रूप में अवतरित कर उसे चोर, व्यभिचारी, शठ व वञ्चक भी दर्शा दिया। श्री कृष्ण दूध, मक्खन, दही चुराने वाला चोर युवावस्था में गोपियों के साथ रास लीला रचाने वाला व्यभिचारी, १६१०८ रानियां रखने तथा प्रत्येक से १०-१० पुत्र उत्पन्न करने वाला असंयमी व्यक्ति बता दिया (ब्रह्मवैवर्त पुराण) जबकि श्री कृष्ण की एक ही पत्नी रुक्मिणी थी और संयमशील ऐसे कि विवाहोपरान्त उससे भी उन्होंने १२ वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का व्रत रखवा लिया था। इसके बाद परम पराक्रमी पुत्र प्रद्युम्न को जन्म दिया। परन्तु पुराणों में कृष्ण चरित्र, भागवत, ब्रह्मवैवर्त, पद्म, ब्रह्म, विष्णु, वायु, स्कन्द, कूर्म आदि पुराणों में वर्णित हुआ है। रागरङ्ग, रास लीला, गोपियों के चीरहरण, कुब्जा प्रसङ्ग, विरजा व राधा प्रसंग आदि का बड़ा ही अश्लील वर्णन भागवत व ब्रह्मवैवर्त में हुआ है। राधा प्रसंग के सन्दर्भ में तो ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में श्री कृष्ण को बालक पन में ही अत्यन्त

कामुक दर्शा दिया है। उसमें उल्लेख है कि एक दिन नन्द कृष्ण को गोद में लिए गायें चराने वन में गये। सहसा घनघोर घटा उमड़ आई। बिजलियां चमकने लगी। बालक घबराया-रोने लगा। तभी राधा भी वहां आ पहुंची। नन्द ने बालक उसे देकर आश्वस्त करने को कहा। वह उसे लेकर दूर निकल गई। वहां पहले से ही रासमण्डप सजा हुआ था। ब्रह्मा जी भी वहां विद्यमान थे। बालक कृष्ण ने युवक रूप धारण कर लिया। पुष्प सज्जित सेज पर आ लेटे। ब्रह्मा जी ने राधा का हाथ उनके हाथ में थमा दिया। दोनों रतिरत हुए। प्रातः कृष्ण पुनः बालक रूप में आ गये। राधा उसे यशोदा के पास ले गई। बोली भूखा है दूध पिला दो। यशोदा ने स्तन पान कराया। इसके बाद राधा उसे हर रात्रि ले जाती, बालक युवा रूप धारण करता और वही सिलसिला चालू हो जाता (ब्रह्मवैवर्त्त पुराण खण्ड ४ अध्याय १६) ऐसे ही अश्लील वर्णन कुब्जा प्रसङ्ग, रास लीला प्रसङ्ग, चीर हरण आदि के भागवत में भी हुए हैं।

कितने दुख की बात है कि पुराणों की इन कपोलकल्पित कथाओं से हमारी वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता पर जो कलुषित प्रभाव पड़ा है, और पड़ता जा रहा है उससे हिन्दू जाति का बड़ा ही अहित हुआ है। इन्हीं कथाओं पर आधारित भजनों, गीतों, कविताओं व कृष्णलीलाओं के आयोजनों से और भी अधिक अहित हो रहा है। महाभारत के महामानव योगीराज श्री कृष्ण के पवित्र एवं उत्कृष्ट चरित्र को अनायास ही कलंकित किया जा रहा है। निश्चय ही वैदिक वाङ्मय का विद्यार्थी जब वेद, उपनिषद व दर्शन शास्त्रों में उल्लिखित आध्यात्मिक तत्व ज्ञान का अध्ययन करने के बाद पुराणों पर दृष्टिपात करता है तो उसके हृदय में एक हूक सी उठती है, एक ठण्डी साँस निकलती है और वह चीख उठता है, 'हे भगवान! आर्यों की उत्कर्ष संस्कृति एवं सभ्यता का कैसा अधःपतन हो गया!!

कर्मयोगी श्रीकृष्ण

अर्जुन देव स्नातक, [५ सीताराम भवन, फाटक आगरा कैण्ट]

भारत वह भव्य भूमि है जहाँ अनेक महान पुरुष अपने महान् गुणों एवं कार्यों से जन-जन के प्रशंसा के पात्र बने हुए हैं। इन्हीं महापुरुषों में कर्मयोगी श्री कृष्ण का नाम आदर के साथ लिया जाता है। श्री कृष्ण जीवनी के आधारभूत दो ग्रन्थ हैं—भागवत पुराण एवं महाभारत। इनमें भागवत पुराण में वर्णित श्री कृष्ण का जीवन हेय, त्याज्य एवं घृणास्पद है। इसमें वे विलासी, चोर, जार, लम्पट, धूर्त आदि दुर्गुणों के भंडार हैं। जबकि महाभारत के श्री कृष्ण त्यागी, तपस्वी, कर्मयोगी, सदाचारी आदि सद्‌गुणों के भंडार हैं। एक को पढ़ने से देशवासियों का चरित्र पतन के गर्त में गिरता है तो दूसरे को पढने से देश वासियों को आदर्श चरित्र निर्माण की प्रेरणा मिलती है। निस्सन्देह महाभारत वर्णित श्री कृष्ण का चरित्र माननीय पठनीय एवं अनुकरणीय है।

श्री कृष्ण एक कर्मयोगी महापुरुष थे। उनका समग्र जीवन यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के दूसरे मन्त्र की व्याख्या है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

वे आजीवन कर्म में संलग्न रहे, उन्होंने जो भी कर्म किये वे महान थे, त्याग भाव से युक्त थे, समर्पण की भावना से परिपूर्ण थे, अतएव उनके कर्म बन्धन के कारण नहीं थे, वे सच्चे कर्मयोगी थे। कर्म बन्धन तीन प्रमुख दोषों के कारण होता है— काम, क्रोध और लोभ। इन तीनों दोषों से पूर्णतया मुक्त उनका जीवन मानव मात्र के लिए प्रेरणा दायक है। वे योगी थे। योग दर्शनकार के अनुसार—"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"

चित्त वृत्तियों का निरोध योग होता है। श्री कृष्ण पूर्णतया निरुद्ध-चित्तवृत्ति वाले थे—योगी थे, परमयोगी थे।

"योगः कर्मसु कौशलम्" के अनुसार कर्म में कौशल प्राप्त करना योग है। उक्ति के अनुसार श्री कृष्ण निरुद्ध चित्तवृत्ति वाले, कर्म कुशल

योगी थे। गीता में योग के विषय से स्पष्ट लिखा है कि

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जयः।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

श्री कृष्ण आसक्ति रहित, सफलता-असफलता, जय-पराजय, हानि-लाभ आदि में समत्व के साथ रहकर कर्म में संलग्न रहते थे, अतएव कर्मयोगी थे। इस प्रकार समत्व भाव से संसार में रहकर कर्म करना कर्मयोग है, प्रत्येक कर्म को अनाशक्ति पूर्वक करना कर्मयोग है, कर्म के आधार पर योगारूढ़ होना कर्मयोग है, कर्म से अमृतमय परम पद की प्राप्ति कर्मयोग है। श्री कृष्ण का समग्र पावन चरित्र इसी आधार पर था—अतः वे कर्मयोगी थे।

श्री कृष्ण ने जीवन भर जो किया वह आसक्ति रहित होकर, फलेच्छा से रहित होकर किया। वे कर्मयोगी इसलिए भी थे कि उनका सम्पूर्ण जीवन "परित्राणाय साधूनाम्" सज्जनों की रक्षा के लिए तथा—"विनाशाय च दुष्कृताम्" दुष्टों के विनाश के लिए एवं—"धर्म संस्थापनार्थाय" धर्म की स्थापना के लिए था। उन्होंने अपने जीवन से मानव मात्र को प्रेरणा दी है कि इस क्षण भंगुर जीवन को सज्जनों की रक्षा, दुष्टों की नाश एवं धर्म की स्थापना के लिए लगाना चाहिए।

वे तपस्वी, चरित्रवान् तथा सद्गुणों के भण्डार थे। वे विलासी कामी नहीं थे। उनका शरीर बलवान् था, वे शक्ति के आगार थे। तभी तो उन्होंने गोकुल में अपनी बाल्यावस्था में पूतना, शकटासुर, त्रिणावर्त, बकासुर आदि दुष्टों का विनाश किया। आगे चलकर मथुरा में कुलवलयापीड विशाल हाथी को सभा भवन के द्वार पर ही मार गिराया, इतना ही नहीं, श्री कृष्ण तथा बलराम ने सभा भवन में चाणूर, मुष्टिक, जैसे पहलवान मल्लयुद्ध कर उन्हें परास्त किया। बाद में अत्याचारी कंस को समाप्त कर दिया तथा स्वयं निर्लोभी रहकर कंस के पिता उग्रसेन को ही मथुरा का राजा बना दिया। विलासी, भोगी, कामी व्यक्ति में इतना बल और इतना महान त्याग कहाँ हो सकता है? महाभारत सौप्तिक पर्व १२।३०, ३१ में लिखा है—

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत् पार्श्वमभ्युपेत्य यो मया तपसार्जितः ॥
समान व्रत-चारिण्याँ रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमार-तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ॥

उक्त प्रमाणानुसार यह भी सिद्ध है कि उन्होंने अपनी पत्नी रुक्मिणी के साथ हिमालय के पार्श्व में बैठकर ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करते हुए महान तप किया और तब उसका प्रद्युम्न नाम का एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह सिद्ध है कि वे विलासी, कामी या भोगी नहीं थे। उन्होंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी।

कर्मयोगी श्री कृष्ण क्रोधजीत भी थे। दूत बनकर गये हुए श्रीकृष्ण के साथ दुर्योधन ने भरी सभा में दुष्टता का व्यवहार किया, उन्हें विविध प्रकार से अपमानित किया, किन्तु श्री कृष्ण अत्यन्त शान्त रहे उन्होंने किसी प्रकार भी क्रोध नहीं किया शिशुपाल के अनेक अपराध उन्होंने मुस्कुराहट के साथ सहन किये। महाभारत के युद्ध में भी वे सदैव अविचलित भाव से रहे, शस्त्रहीन होते हुए उन्होंने पांडव पक्ष का समर्थन किया और अपने अनुपम नेतृत्व से कर्म कौशल से पाण्डवों को विजयश्री दिलाई। यद्यपि युद्ध की भीषण परिस्थितियों को टालने का उन्होंने अथक प्रयास किया। अपनी सौम्यता, सज्जनता तथा शान्तचित्तता के साथ दुर्योधन को बहुत समझाया किन्तु—

"सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव"

दुर्योधन के इस क्रोध पूर्वक वचन के आगे कर्म योगी की एक भी नहीं चली। परिणामस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ। मनु प्रोक्त सिद्धांतानुसार श्री कृष्ण ने

"आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्"

समस्त दुष्टों का, दुष्टों का पक्ष लेने वालों का विनाश किया। परम राजनीतिज्ञ श्री कृष्ण ने यह सब स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर नहीं किया अपितु निष्काम भावना के साथ—

"धर्म संस्थापनार्थाय" धर्म की स्थापना के लिए किया।

कर्मयोगी श्री कृष्ण के समय अधिकांश धर्म का मर्म जानने वाले, अनुपम, योद्धा, तपस्वी भी—

"अर्थस्य पुरुषो दास:" धन में दास हो गये थे। अर्थ की दासता के कारण उनमें सत्य कथन का साहस नहीं था। एक अकेले कर्मयोगी अर्थ की दासता में नहीं थे, वे निर्लोभी थे। अतएव निर्भीक सत्य वक्ता थे। श्री कृष्ण ने भरी सभा में बड़े-बड़े दिग्गजों को बुराई का साथ देने के कारण साहस के साथ धिक्कारा। दुर्योधन ने राजमहल में भोजन

का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने निर्भीकता के साथ कहा—

सम्प्रीति-भोज्यान्यन्नानि आपद् भोज्यानि वा पुनः ।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद् गता वयम् ।।
(उद्योग पर्व ९१।२५)

राजन् ! किसी के घर में अन्न दो कारण से खाया जाता है—या तो प्रेम के कारण या आपत्ति पड़ने पर। प्रीति तुममें नहीं है और संकट में हम नहीं हैं।

श्री कृष्ण महान् कर्मयोगी थे । उन्होंने भारत को एक सूत्र में सुदृढ़ बनाने का महान कार्य किया । उस समय में—

"गृहे-गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियंकराः"

घर-घर में राजा थे, वे भी अपने-अपने स्वार्थ में संलग्न थे । भारत को विघटित करने वाले जरासंध, कंस आदि जैसे दुष्ट राजाओं का विनाश करके समस्त भारत को एक सूत्र में आबद्ध करने का महान कार्य किया। उन्होंने स्वयं किसी के राज्य पर अधिकार नहीं किया, किसी के राज्य के शासक वे नहीं बने और उन्होंने ऐसी इच्छा भी नहीं की । किसी के राज्य का हरण उन्होंने स्वार्थ भावना से नहीं किया । वे

'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्' यजु. ४०।१

इस वेद वचन का पालने वाले थे। उनकी यह निर्लोभिता महान् है।

निश्चय से श्री कृष्ण महान कर्मयोगी थे। कर्म उनके जीवन का लक्ष्य था, वह भी निष्काम कर्म, आसक्ति रहित कर्म। उनके जीवन में चारों वर्णों की मर्यादा थी । युद्ध भूमि में निराश अर्जुन के हृदय में गीता जैसा सदुपयोग देकर उन्होंने ब्राह्मण के कार्य का सम्पादन किया तो जीवन में कंसादि अनेक दुष्टों का विनाश कर क्षत्रिय वर्ण की मर्यादा का पालन किया, स्वयं गायों का पालन करके देश की आर्थिक स्थिति को सबल बनाने की प्रेरणा देकर वैश्य धर्म का पालन किया तो राजसूय यज्ञ में विद्वानों, ऋषियों आदि की चरण पादुका उठाने एवं चरण धोने के कार्य का व्रत लेकर शूद्र वर्ण के कार्य का सम्पादन किया । इस प्रकार वे—

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् "

के अनुसार अपना समग्र जीवन व्यतीत करने वाले आदर्श कर्म परायण महापुरुष थे।

हमारा कर्त्तव्य आज के भौतिक, विलास से परिपूर्ण युग में रहने वाले पथभ्रष्ट नवयुवकों, वृद्धों और मानव मात्र को महाभारत वर्णित श्री कृष्णका जीवन चरित्र प्रेरणा देता है कि हम भी सदाचारी, निर्लोभी क्रोधजित, सद्गुणों के आगार एव कर्म योगी बनें, स्वार्थरहित बनें, लोभ रहित बनें, त्यागी, तपस्वी बनें, देश प्रेमी बनें तथा सच्चे अर्थो में कर्म परायण महापुरुष बनें। धन के प्रति आसक्ति, सांसारिक वस्तुओं के प्रति लगाव, शरीर के प्रति ममता यह सब बन्धन का कारण है, दुख का कारण है। अतः उसे त्यागकर प्रत्येक मानव अपने कार्यों को—

"परित्राणाय साधूनाम्"
सज्जनों को रक्षा के लिए
"विनाशाय च दुष्कृताम्"

अपने अपन पराये को भावना से रहित होकर दुष्टों के विनाश के लिए

धर्मसंस्थापनार्थाय

धर्म की स्थापना की भावना से करे। तभी कर्मयोगी श्री कृष्ण का पावन पर्व मानना सार्थक होगा।

महान् तेजस्वी श्री कृष्ण

(आचार्य चन्द्रदेव शास्त्री, महर्षि दयानन्दर्वाव गुरुकुल कृष्णपुर,
पो० मम्मझना, फर्रुखाबाद)

तेजोऽसि तेजोमयि धेहि ।
वीर्यमसि वीर्यमयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युंमयि धेहि ।
सहोऽसि सहो मयि धेहि ।। (य० १६/१६)

विश्व शिरोमणि आर्यावर्त की पुण्यभूमि में उत्पन्न हुए गौतम, कपिल, कणाद, पतञ्जलि, व्यासादि ऋषि-महर्षियों एवं मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामादि महामानवों की परम्परा में जन्मे श्रीकृष्ण वेद मन्त्र में प्रार्थित समस्त मानवीय गुणों से विभूषित थे। इसीलिए युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है कि—"श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों के सदृश है जिनमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।"

(स० प्र० ११वां समु०)

और भी कहा है कि—"श्रीकृष्ण जी एक भद्र पुरुष थे। उनका महाभारत में उत्तम वर्णन किया हुआ है।" (म० द० उपदेश मञ्जरी)

वस्तुतः श्रीकृष्ण जहां अतिशय सहनशील थे वहीं उन्होंने कंस, शिशुपाल, शाल्वादि जैसे कुलघाती दुष्टों का संहार करके अपनी वेदोक्त क्रोधकारिता का भी परिचय दिया था। यही कारण है कि अपनी विद्वत्ता और धर्माचरण के कारण जहां वे देवों-विद्वान् ब्राह्मणों के शिरोमणि बने, वहीं वे अपने तेजोबल, न्यायप्रियता और शास्त्रोक्त नीतिमत्ता से अपने समकालीन क्षत्रिय राजाओं में अपने ओजबल और पराक्रम का परिचय देते रहे। यथार्थ में श्रीकृष्ण एक धर्मात्मप्रिय युग पुरुष थे।

पाठक वृन्द ! आइये अब ऋचा में वर्णित तेजस्वी होने के गुणों का क्रमशः महाभारत के श्रीकृष्ण चरित्र से परिचय प्राप्त करें।

'मन्त्रश्रुत्यं चरामसि" के अनुसार वेदानुकूल आचरण से ही महापुरुष अपने उज्ज्वल चरित्र का निर्माण किया करते हैं। योगेश्वर श्रीकृष्ण जी का जीवन चरित्र भी पूर्ण वैदिक था। वे महान् तेजस्वी थे। मानव-निर्माण पद्धति की प्रकाशक संस्कार विधि के नामकरण एवं उपनयन इन दोनों संस्कारों में बालक को तेजस्वी होने का आशीर्वाद दिया गया है। तदनुसार बालक का तेजस्वी होना आवश्यक है।

अतः 'तेजोऽसि तेजोमयि धेहि" में प्रथम तेज प्राप्ति की प्रार्थना की है। तेज नाम प्रकाश का है, जो कि परमात्मा से ही प्राप्त किया जा सकता है। तेज प्राप्ति का क्रमशः वर्णन निम्न प्रकार है—

प्रथम व्यक्ति सहनशील हो पश्चात् दुष्टों पर क्रोधकारी, इससे ओज, बल और पराक्रम से युक्त हुआ तेज को प्राप्त करता है।

धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की तैयारियां पूर्ण हो चुकी हैं। युधिष्ठिर द्वारा निमंत्रित देश देशान्तरों से ऋषि-महर्षि, राजागण तथा प्रजाजन आकर शोभायमान हो रहे हैं। यज्ञ की सम्पन्नता के लिए सभी को पृथक्-पृथक् कर्त्तव्य कार्य सौंपे जा चुके हैं। श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के पैर धोने का स्वयं किया। इससे ज्ञानी और तपस्वी विप्रवरों के प्रति श्रीकृष्ण का अगाध श्रद्धा भली-भाँति प्रकट होती है। आर्यावर्त के श्रेष्ठतम पुरुष की महान् नम्रता और विनयशीलता का भी सहज अनुभव हो जाता।

"सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः" इस महर्षि भर्तृहरी की सत्योक्ति के अनुरूप योगेश्वर श्रीकृष्ण पर-सेवा-रूप परमाभूषण से सर्वथा अलंकृत थे। श्रीकृष्ण की प्रबन्ध पटुता में धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ महती सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। दीक्षा पूर्ण होने पर नृप युधिष्ठिर ने पितामह श्री भीष्म से उपस्थित राजाओं में सर्वश्रेष्ठ अर्घदान के लिए योग्य अधिकारी के सम्बन्ध में पूछा तो भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण को ही अर्घदान का पात्र बताते हुए कहा कि—

ज्ञान वृद्धा मया राजन् बहवः पर्युपासिताः।
तेषां कथयतां शौरेणाहं गुणवतो गुणान्॥

(सभा पर्व ३८।१२)

हे राजन् ! मैंने बहुत से ज्ञानवृद्ध तपस्वी लोगों का सत्संग किया है और उन्हीं के द्वारा कथित गुणों के प्रताप से ही मैंने यह गुणवत्ता प्राप्त की है।

अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं युधि ।
न पश्यामि महीपालं सात्वती पुत्र तेजसा ।।

अत: हे राजन् ! मैं यहां उपस्थित इन राजाओं की सभा में किसी ऐसे राजा को नहीं देखता, जिसे श्रीकृष्ण ने अपने अतुल तेज से न जीता हो । अन्यच्च—

वेद-वेदांग विज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा ।
नृणांलोके हिकोऽन्यो विशेषः केशवादृते ।।

(सभा पर्व ३८/१९)

वेद-वेदांगादि शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा क्षात्र बल में भी परिपूर्ण श्री कृष्ण के अतिरिक्त इस मनुष्य समाज में दूसरा कौन ऐसा मनुष्य है ? अर्थात् कोई नहीं ।

दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिबुद्धिरुत्तमा ।
सन्नतिः श्री धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्चनियताऽच्युते ।।

(सभा पर्व ३८/२०)

इसी प्रकार इनका दान, इनका कौशल, इनकी शिक्षा और ज्ञान, इनकी शक्ति, इनका यश, इनकी शालीनता, नम्रता, धैर्य और सन्तोषादि ये गुण भी (श्रीकृष्ण में) अतुलनीय हैं ।

ऋत्विग् गुरुर्विवाह्यश्च स्नातको नतिःप्रियः ।
सर्वमेतद् हृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युत ।।

(सभा पर्व ३८/२२)

ये ऋत्विज् हैं, गुरु हैं, जामाता होने के योग्य हैं, स्नातक हैं और लोकप्रिय राजा हैं । ये सभी गुण मानो इस एक जितेन्द्रिय महापुरुष में मूर्तरूप हो गए हैं । अतः इन्हीं (श्रीकृष्ण) को ही प्रथम अर्घ देना चाहिए । इस प्रकार पितामह की सम्मति से सहदेव जी ने युधिष्ठर के आदेशानुसार श्रीकृष्ण को ही सर्व प्रथम अर्घदान किया ।

श्रीकृष्ण का यह सम्मान उनके प्राक् विरोधी चेदिराज शिशुपाल से असह्य हो गया । उसने श्रीकृष्ण को पूजा का अनधिकारी बताते हुए उनके प्रशंसक भीष्म जी एवं पाण्डवों के लिए भी गर्हित शब्दों का प्रयोग किया । इस प्रकार शिशुपाल बोलते-बोलते आपे से बाहर हो गया और तर्क एवं विचारशक्ति का सर्वथा उल्लंघन कर उसने श्रीकृष्ण के लिए नितांत अमानवीय शब्दों का भी प्रयोग किया । इतने पर भी क्षमा के मूर्तिमान् अवतार, परमस्थित प्रज्ञ, धैर्यधनी, योगिवर्य श्री कृष्ण—शिशुपाल की इन

कटूक्तियों को सुनकर भी कुछ नहीं बोले। यदि वे चाहते तो तभी उसका प्राणान्त कर सकते थे। क्योंकि उनमें इतना बल और शौर्य था पुनरपि वे अत्यन्त धैर्यपूर्वक उसकी बातें सुनते रहे। क्योंकि उन्होंने तो "सहोअसि सहोमयि धेहि" का साक्षात्कार किया था। वे आप्त पुरुष का लक्षण यजुर्वेद में (३४.१८) में महर्षि दयानन्द के वचनों से जाना जा सकता है यह वेदोक्त आप्त पुरुष लक्षण उनमें सर्वशान्त प्रियता के कारण सर्वथा घटता था।

आगे जब पुनः शिशुपाल ने कृष्ण के शौर्यादि गुणों का उपहास करते हुए युद्ध के लिए ललकारा तो उनका परम पावन मन्यु जाग उठा और उन्होंने "मन्युरसि मन्युम्मयि धेहि" का पवित्र पाठ करते हुए उपस्थित नरेन्द्रमण्डल के समक्ष ही पापी शिशुपाल को यमलोक पहुंचा दिया। यह थी उनकी दुष्टों के प्रति क्रोधकारिता अर्थात् धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार। इसी पवित्र मन्यु का परिचय जहां उन्होंने स्वयं के व्यवहार से कंसादि को मारकर दिया, वहीं उन्होंने महाभारत के मध्य धर्मयुद्ध का संचालन करते हुए अधर्मी जरासन्ध, जयद्रथ, कर्ण, गोत्र हत्यारे दुर्योधनादि का संहार करके धर्मराज्य का स्थापन कर पवित्र नीतिमत्ता का भी परिचय दिया है।

मननशील मानव का ही यह सामर्थ्य है कि वह सहनशीलता के गुण को अपनाकर दुर्जन-सज्जन का विचार करता है। महर्षि दयानन्द ने ठीक ही कहा है कि—

संसार दुःख दलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहित कर्म परोपकारा:"

अर्थात् संसार के दुःखों के हरण करते तथा परोपकार करने में निरन्तर प्रयत्नशील हैं वे नर धन्य हैं ऐसे ही लोगों का समाज में ओज पराक्रम बढ़ा करता हैं। ऐसा ही महान् विभूतियों के साथ सज्जनों का एक संगठन खड़ा हो जाता है। इसी को लोकसंग्रह कहते हैं। वह जन शक्ति जिसके साथ हो वही उसका वास्तविक ओज अर्थात् पराक्रम रूप फल है। यह जन शक्ति कृष्ण के सर्वथा साथ थी।

यहां तक कि दुर्योधन की ओर लड़ रहे कुछ कर्ण, शकुनि आदि स्वार्थान्ध योद्धाओं को छोड़ शेष भीष्मपितामह और गुरु द्रोणादि सभी महारथी हृदय से कृष्ण के पक्ष में थे। युद्ध में विजयी होने का उनका आशीर्वाद कृष्ण द्वारा संरक्षित अर्जुनादि पाण्डवों को ही प्राप्त था।

वस्तुतः यही लोक संग्रह सच्चे अर्थों में कृष्ण ओज बल का परिचालक है। इसी से कृष्ण वेदोक्त "ओजोऽस्योजोमयि धेहि" के साक्षात्मूर्त रूप थे।

ओजस्विता के साथ-साथ श्रीकृष्ण बलवान् भी इतने थे कि उन्होंने पापी कंस के पाप रूप कर्मों का फल उसके यहाँ जाकर उसे मारकर ही दिया। साथ ही तप-त्याग का परिचय देते हुए श्रीकृष्ण ने दुष्ट कंस के धर्मात्मा पिता तथा अपने नाना उग्रसेन को ही मथुरा का राज्य सौंप पुनः धर्मराज्य की संस्थापना की। इसी से पता चलता है कि श्रीकृष्ण अत्यन्त बलशाली, परमकार्यदक्ष, न्यायप्रिय, परहितरत और धर्मात्मा थे। अतः वे एक आदर्श पुरुष थे। इस प्रकार "बलमसि बलंमयि धेहि" की इस सत्य प्रार्थना का हम कृष्ण के जीवन में प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं।

जहाँ श्रीकृष्ण सहनशीलता, मन्यु, ओज, बलादि गुणों की प्रतिमूर्ति थे वहीं उनमें वीर्यत्व भी कम नहीं था। उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत को भी बड़ी कठोर साधना के साथ निभाया था। इसमें वे स्वयं कहते हैं कि—

> ब्रह्मचर्यं महद्घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
> हिमवत् पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः॥
> समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
> सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुत.॥

(महा० सौप्तिक पर्व अ० १२)

श्री कृष्ण कहते हैं कि मैंने हिमालय की रमणीय कन्दराओं में बैठकर महती तपस्या के साथ १२ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य के महान् घोर व्रत को पार किया है, तब समान व्रतचारिणी रुक्मिणी में गर्भ धारण कर प्रद्युम्न नाम का तेजस्वी पुत्र मैंने उत्पन्न किया है। उपर्युक्त कथन से यह भी स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की एक मात्र पत्नी रुक्मिणी भी पूर्ण सती साध्वी स्त्री थी अर्थात् वह भी व्रत पालन में अपने एक मात्र पति श्रीकृष्ण से किसी भी प्रकार कम नहीं थी। श्री कृष्ण प्रद्युम्न का परिचय देते हुए उसे "मे सुत": मेरा पुत्र कहकर स्वयं गौरवान्वित होने का सर्वदा स्वाभिमान करते थे। वस्तुतः योग्य पिता ही योग्य सन्तान का ऐसा अभिमान कर सकता है। इस एक घटनाक्रम से ही सम्यक् सिद्ध है कि ऋचा में वर्णित "वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि" का श्री कृष्ण ने अपने जीवन काल में पूर्णतया व्यावहारिक पाठ किया।

इस प्रकार महाभारत के आलोक में श्रीकृष्ण जीवन चरित्र का निष्पक्ष अवलोकन करने से पता चलता है कि श्रीकृष्ण ने प्रभु की वैदिक उपासना द्वारा सहनशीलता ईश्वरीय गुणों के धारण से पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न हो मानवता की सेवा-साधना का सच्चा आदर्श प्रस्तुत किया था। इसी से वे महान् तेजस्वी कहलाए और मानवों के कोटानुकोटि कष्टों को हरते हुए स्वयं को धन्य एवं अमर कर गए। अतः पाठक वृन्द! आइये—

"महाजनो येन गतः स पन्था" के अनुसार हम भी अपने-पूर्ववर्ती अनुकरणीय महान् तेजस्वी आदर्श पुरुष श्रीकृष्ण के लोकोज्ज्वल चरित्र का अनुकरण करते हुए कृतकृत्यता को प्राप्त कर तेजस्वी बनें॥

एक आदर्श चरित्र

(राजवीर शास्त्री)

(१) धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान्

श्रीकृष्ण धर्म के प्रति अत्यधिक आस्थावान् थे। उन्होंने जीवन भर प्रत्येक धर्म क्षेत्र में धर्म की प्राणपण से रक्षा करने का सदा ध्यान रखा था, इसीलिये उस समय सार्वजनिक-धारणा बन चुकी थी—

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः। (महा० उद्योग ६८।९)

अपने धर्म (कर्त्तव्य) से जीवन भर कभी विमुख न होने से ही श्रीकृष्ण का एक विशिष्ट नाम अच्युत भी प्रसिद्ध हो गया था। धर्म विषयक दृढ़ता के श्रीकृष्ण के जीवन में कतिपय प्रसंग द्रष्टव्य हैं—

(२) धर्मराज युधिष्ठिर के अनुग्रह से श्रीकृष्ण स्वयं दूत बनकर दुर्योधन के निवास पर गये और दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास किया कि इस पारस्परिक युद्ध के परिणाम अतिशय भयंकर होंगे, तुम पाण्डवों को उनका भाग देकर इस युद्ध से होने वाले विनाश से बच सकते हो। किन्तु मदोन्मत्त दुर्योधन पर उपदेश का कुछ भी प्रभाव न देखकर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन का आतिथ्य भी स्वीकार नहीं किया। तब दुर्योधन ने इसका कारण पूछा—'हे पुरुषोत्तम ! हमें कोई कारण दिखाई देता, जिसके कारण आपने हमारा आतिथ्य भी ग्रहण[१] नहीं किया। हे गोविन्द ! आपके साथ हम लोगों का न तो वैर है और न झगड़ा ही है।"

इस पर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के किये अधर्म की निन्दा करते हुए और धर्म-पक्ष को न छोड़ते हुए बहुत ही स्वाभिमान पूर्ण निम्न वचन कहे—"हे राजन्![२] मैं किसी कामना से क्रोधवश, द्वेष के कारण, स्वार्थ

---

(१) न च तत्कारणं विद्मो यस्मिन् नो मधुसूदन।
पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नामंस्थाः पुरुषोत्तम॥
वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः।

(२) नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थ कारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथंचन॥
(महा० उद्योग० अ० ९१।२१, २२, २४)

पूर्ति के कारण, बहाने बाजी अथवा लोभ के कारण, किसी भी प्रकार से धर्म का त्याग नहीं कर सकता हूं।" क्योंकि आप धर्म पर चलने के लिये उद्यत नहीं हैं, अतः आपका आतिथ्य भी मैं ग्रहण नहीं कर सकता।

(२) श्रीकृष्ण ने कौरवों की सभा में युद्ध के भयंकर परिणामों तथा धर्म पक्ष की रक्षा के लिये बहुत ही युक्तियुक्त भाषण दिया, किन्तु उनका भाषण दुर्योधन तथा उसकी चाण्डाल चौकड़ी को रुचिकर नहीं लगा। तदनन्तर दुर्योधनादि ने गुप्त मन्त्रणा करके श्रीकृष्ण को सभा भवन से बाहर निकलते ही बन्दी बनाने का षड्यन्त्र रचा। वीर सात्यकि ने इस गुप्त मन्त्रणा के संकेतों को ही समझकर इसका भण्डाफोड़ करते हुए उसी सभा में ये वचन कहे—"हे सभा में बैठे वीर पुरुषो![1] जैसे बालक और मूढमति लोग जलती आग को कपड़े में बांधना चाहें, वैसे ही ये कतिपय मन्दमति कौरव इन कमल नयन श्रीकृष्ण को कैद करने की योजना बना रहे हैं।"

इस पाप पूर्ण गुप्त मन्त्रणा का भेद खुलने पर दूरदर्शी विदुर ने धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण की वीरता एवं धर्म-दृढ़ता का वर्णन करते हुए जो शब्द कहे, वे श्रीकृष्ण के चरित का यथार्थ मूल्यांकन करने वाले हैं। हे धृतराष्ट्र! तुमने श्रीकृष्ण के उत्तम चरित को नहीं जाना है। तेरे पुत्र दुर्योधन ने जो श्रीकृष्ण को कैद करने की योजना बनाई है, वह उनकी नासमझी ही है। क्योंकि इस प्रकार के भय दिखाकर श्रीकृष्ण को धर्म-मार्ग से पृथक् नहीं किया जा सकता है। "ये पुरुषोत्तम[2] श्रीकृष्ण किसी प्रकार भी निन्दित अथवा पाप कर्म नहीं कर सकते और न कभी धर्म से ही पीछे हट सकते हैं।"

इस प्रकार महा विद्वान् विदुर के कथन के बाद श्रीकृष्ण ने भी निर्भय एवं स्वाभिमान से निम्न वचन कहे—"हे राजन्[3] (धृतराष्ट्र)! यद्यपि क्रोध में भरे हुए इन समस्त कौरवों को मैं कैद करने की शक्ति

---

(१) इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः।
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः॥

(२) न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यात् पापं कथंचन।
न च धर्मादपक्रामेदच्युतः पुरुषोत्तमः॥

(३) एतान् हि सर्वान् संरब्धान् वियन्तुमहमुत्सहे।
न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथंचन॥

(महा० उद्योग० १३० अ०/१६, २२, २५)

रखता हूं, तथापि मैं किसी भी तरह से निन्दित अथवा पाप कर्म को नहीं करना चाहता हूं।" श्रीकृष्ण की यह स्वाभिमान पूर्णोक्ति उनको धीर वीर सिद्ध करती है। क्योंकि धीर पुरुष ही न्याय के रास्ते से कभी विचलित नहीं होते हैं—'न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।'

(२) श्रीकृष्ण ने शिष्टाचार का कभी परित्याग नहीं किया—

जब व्यक्ति महान् बन जाता है, तो विरले ही ऐसे पुरुष होते हैं, जो अभिमान-परवश नहीं हो जाते हों। महान् बनकर छोटे-बड़ों के प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है, यह भाव भी बहुत कम व्यक्तियों में रह पाता है। अपने से छोटों, निर्बलों अथवा असहायों के प्रति उपेक्षाभाव तो प्रायः आ जाता है। किन्तु महा मानव श्रीकृष्ण के समस्त जीवन का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि वे शूरवीर व महाविद्वान् होते हुए भी बहुत ही विनम्र तथा छोटे बड़ों का यथायोग्य सत्कार सदा किया करते थे। इस विषय में उनके जीवन के कतिपय प्रसंग द्रष्टव्य है—

(१) जिस समय कर्ण के साथ युद्ध हो रहा था, उस भीषण संग्राम में वीरवर अर्जुन ने अश्वत्थामा को पराजित करके एक बार अपनी समस्त सेना पर दृष्टि पात किया। और बड़े भाई युधिष्ठर को युद्ध स्थल पर न देखकर कुछ चिन्तित हुए। अर्जुन ने भीम से धर्मराज के बारे में पूछा तो भीम ने यह उत्तर दिया—

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥

कर्ण के बाणों से संतप्त युधिष्ठिर युद्ध क्षेत्र से हट गये हैं। उनकी स्थिति का ठीक से पता नहीं है। भीम से यह सुनकर अर्जुन भाई से मिलने के लिए बहुत उत्सुक हो गए और भीम को युद्ध का उत्तरदायित्व सौंपकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही खोज करते हुए युधिष्ठिर के पास पहुंचे—

ततश्च गत्वा पुरुष प्रवीणै, राजानमासाद्य शयानमेकम्

रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद् व वन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ॥

और रथ से उतरकर अकेले लेटे हुए युधिष्ठिर के चरणों में श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ने सादर प्रणाम किया।

श्रीकृष्ण[१] पाण्डवों के दूत बनकर कौरव-सभा में गये थे। वहां जाकर सभा में बहुत सारग्राही शान्तिप्रद भाषण श्रीकृष्ण ने दिया। किन्तु

(१) महा० कर्ण पर्व० ६५ वां० प्र०।

हठी दुर्योधन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। तदनन्तर श्रीकृष्ण अपनी बुआ और पाण्डवों की माता कुन्ती के निवास स्थान पर गये—

प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च।
आचख्यौ च समासेन यद्वृत्तं कुरु संसदि॥

अर्थात् श्री कृष्ण ने बुआ कुन्ती के घर जाकर सर्व प्रथम चरण छूकर प्रणाम किया और तत्पश्चात् कौरव सभा का संक्षेप में समस्त वृत्तान्त सुनाया। यह कितना महान् आदर्श श्री कृष्ण का है, यह संसार के इतिहास में अनुपम ही है।

महाभारत[2] के युद्ध का नवम-दिन समाप्त हो गया था। पितामह भीष्म के युद्ध से पाण्डव पक्ष में भय व्याप्त हो रहा था। धर्मराज युधिष्ठिर को चिन्ता देखकर श्री कृष्ण ने उन्हें शान्त करते हुए भीष्म को जीतने का उपाय बताता और कहा—

"मां वा नियुङ्क्ष्व सौहार्दाद योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव॥

हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! तुम चिन्ता मत करो। यद्यपि मैंने यह व्रत लिया था कि मैं युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊंगा। पुनरपि यदि तुम्हारा आदेश होगा तो मैं भी भीष्म से युद्धार्थ तैयार हूं। और मैं सच कहता हूं—"हनिष्यामि रणे भीष्मम्" मैं रण में भीष्म को अवश्य मार दूंगा। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने भीष्म से ही उनके वध का उपाय पूछने का प्रस्ताव रखा। श्री कृष्ण ने तुरन्त उसे मान लिया। श्री कृष्ण पाण्डवों के साथ भीष्म के निवास स्थान पर पहुंचे

प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रतिवेदिरे

और अन्दर प्रवेश करके "श्री कृष्ण तथा सभी पाण्डवों ने भीष्म को शिर झुकाकर प्रणाम किया और "कथं जयेम सर्वत्र कथं राज्यं समेमहि" कहकर अपनी विजय का उपाय पूछा।

श्रीकृष्ण दूत बनकर हस्तिनापुर जा रहे हैं। रास्ते में श्री कृष्ण ने महर्षियों को देखकर जो शिष्टाचार पूर्ण वर्ताव किया, वह बड़ा आदर्श है—

---

(१) महा० उद्योग० ३२ वां० प्र०।

(२) महा० भीष्म० १०७ वां० प्र०।

सोऽवतीर्य रथात् तूर्णमभिवाद्य जनार्दनः।
यथावृत्तान् ऋषीन् सर्वानभ्यभाषत पूजयन् ॥[1]

श्री कृष्ण ऋषियों को देखते ही रथ से उतरे और सभी ऋषियों को सादर णाम करके उनसे कुशल क्षेम पूछने लगे। "कच्चिल्लोकेषु कुशलं कच्चिद् धर्मः स्वनुष्ठितः" अर्थात हे ऋषियों! तुम्हारी कुशलता तो है। तुम्हारे धर्मानुष्ठान में किसी प्रकार की बाधा तो नहीं आ रही है, इत्यादि।

(३) **श्री कृष्ण आदर्श गृहस्थ थे—**

"अहो किमपि विचित्राणि चरितानि महात्मनाम्" संस्कृत की इस सूक्ति के अनुसार महान पुरुषों के चरित्र अलौकिक ही होते हैं। श्री कृष्ण का भी समस्त जीवन अतीव शिक्षाप्रद एवं आदर्श था। कारागार में ही जन्म होने के कारण शैशव दशा में ही अन्याय अत्याचार के प्रति शोध की भावना आपमें कूट-कूट कर भरी थी। इसी भावना से अनुप्रमाणित होकर श्री कृष्ण ने अपने बालसखाओं के साथ खेलते-कूदते ही दुर्दान्म कंस के मदोन्मत्त मल्लों के दांत खट्टे किये और कंस भी मान मर्दन करके उसकी जीवन लीला को समाप्त किया। विद्यार्थी काल में गुरुवर्य सांदीपनि ऋषि के आश्रम में गरीब अमीर के भेदभाव को भुलाकर ब्रह्मचर्य व्रत का कठोरता से पालन करते हुए समस्त वेद वेदांगों का अध्ययन किया। और युवावस्था में द्वितीयाश्रम में प्रवेश कर आदर्श गृहस्थ बनकर दिखाया। यद्यपि परिवर्ती भागवत आदि ग्रन्थों में श्री कृष्ण के चरित्र को कलंकित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, किन्तु महर्षि वेदव्यास के बनाये महाभारत में वैसा नहीं है। श्री कृष्ण के सच्चरित्र की स्थान-स्थान पर शत्रु पक्ष के दिग्गजों द्वारा भी प्रशंसा की गई है।

गृहस्थ का मुख्य फल उत्तम सन्तान की प्राप्ति होती है। संतान न हो तो गृहस्थ पति-पत्नी दुःखी रहते हैं और सन्तान होकर बिगड़ जाये तो वे उससे भी अधिक दुःखी रहते हैं। किन्तु उत्तम सन्तान जिसके लिए वेद में प्रार्थना की गई है—"सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम, सुवीरो वीरैः, सुपोषः पोषैः।" उस उत्तम तथा वीर सन्तान की प्राप्ति के लिए माता-पिता को कठोर तपस्या एवं धर्मानुष्ठान का जीवन बिताना होता है।

---

[१] महा० उद्योग०

क्योंकि सन्तान का प्रथम गुरू माता दूसरा पिता ही होता हैं। श्री कृष्ण ने एक पत्नी व्रत होकर उत्तम सन्तान के लिये कठोर ब्रह्मचर्य का १२ वर्ष तक पालन करके एक प्रद्युम्न जैसा वीर पुत्र प्राप्त किया था। जिसके विषय में आजतक यह प्रसिद्धि है—प्रद्युम्नः श्री कृष्णात: प्रति:। अर्थात प्रद्युम्न सादृश्य में श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि ही था। और अनेक बार तो यह भ्रम पैदा हो जाता था कि कौन से श्री कृष्ण हैं और कौन सा प्रद्युम्न है। श्री कृष्ण ने अपनी इस तपस्या का स्वयं ही महाभारत में वर्णन किया है। भीमसेन के द्वारा नियम विरूद्ध दुर्योधन की हत्या करने पर अपने पिता द्रोणाचार्य की मृत्यु से दुखी अश्वत्थामा अत्यन्त विक्षिप्त सा हो गया। और उसका बदला लेने के लिए उसने सोते हुए सतस्त्र हीवालों तथा द्रोपदी के पुत्रों का वध कर दिया। यह हृदय विदारक दृश्य देख-कर भीमसेन को सहन न हुआ और वह अश्वत्थामा को मारने के लिए चल पड़ा। उस समय श्री कृष्ण अश्वत्थामा की क्रूरता एवं वीरता का कथन करते हुए युधिष्ठिर को समझाया कि हमें तुरन्त चलकर भीम की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र को ब्रह्मसिर नामक भयंकर अस्त्र दिया था, जो समस्त पृथ्वी को भस्म कर सकता है और इसने एकबार द्वारिका में आकर मेरे सुदर्शन चक्र को भी मांगा था। इस समय मैंने कहा था—

> ब्रह्मचर्यं महद्घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
> हिमवत् पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः ॥
> समानव्रत चारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायतः ।
> सनत्कुमार स्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ॥
> तेनाप्येतद् महद् दिव्यं चक्रमप्रतिमं रणे ।
> न प्रार्थित मभून्मूढ़ यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥
> (महा० सौप्तिक० १२।३०-३२)

अरे मूढ ब्राह्मण। इस दिव्य चक्र को तो मेरे पुत्र प्रद्युम्न ने भी नहीं मांगा, जिसकी प्राप्ति के लिये मैंने और रुक्मिणी ने हिमालय पर जाकर १२ वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था। ऐसे आदर्श गृहस्थ श्री कृष्ण के चरित भागवत पुराण के रचयिता द्वारा १६ हजार रानियों का, ग्वाल बालाओं के साथ रंगरेलियां करने का लांछन लगाना, मामा की पुत्री, जो बहन हो लगी, राधा के साथ पत्नी भाव दिखाकर मिथ्या दोषारोपण करना तथा स्नान करती हुए नग्न गोपिकाओं के वस्त्र उठाकर भाग जाना इत्यादि दोष नितान्त झूठे ही लगाये हैं। श्रीकृष्ण

का गृहस्थ जीवन भी निष्कलंक एवं आदर्श था, यह उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट हो रहा है।

४ स्वाभिमानी श्री कृष्ण—

श्री कृष्ण कितने स्वाभिमानी वीर पुरुष थे, इसका परिचय महाभारत के कतिपय प्रसंगों से पता चलता है। पाण्डवों तथा कौरवों के पारस्परिक कलह को समाप्त कराने के लिए श्रीकृष्ण स्वयं दूत बनकर कुरुराज दुर्योधन की सभा में तथा उसके निवास पर गए। जब श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के 'कपटपूर्ण व्यवहार को देखा तो अपना उद्देश्य असफल समझ कर चलने लगे और उन्होंने दुर्योधन के आतिथ्य को भी स्वीकार नहीं किया। इस पर दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से इसका कारण पूछा। एक राजा के समक्ष दूत रूप में उपस्थित श्रीकृष्ण ने जिस स्वाभिमान के साथ इस समय उत्तर दिया था यह यथार्थ में अनुपम ही था। श्रीकृष्ण ने कहा—

(क) कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव हि।

(ख) सम्प्रीति भोज्यान्यन्नानि आपद् भोज्यानि पुनः
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥

(उद्योग ९१।१८,२५)

हे कुरुराज दुर्योधन। तुम्हें मेरी यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि दूत अपना लक्ष्य सिद्ध होने पर ही भोजन और आतिथ्य को स्वीकार करते हैं। और दूसरे के घर पर भोजन दो ही परिस्थितियों में किया जाता है—स्नेह वश अथवा आपत्ति में पड़कर। किन्तु हे दुर्योधन ! न तो तुम्हारा हमारे से स्नेह ही है और न हम ही ऐसी आपत्ति में हैं कि जो भूखे ही मर रहे हों।" इसलिए तुम्हारा भोजन किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं है। और श्रीकृष्ण ने राजा के घर का भोजन त्याग कर महात्मा विदुर के घर पर जाकर किया।

इसी प्रकार एक दूसरा प्रसंग देखिए—श्रीकृष्ण के बहुत समझाने पर राज्य के मद में उन्मत दुर्योधन ने जब उचित परामर्श भी नहीं माना और समझाने का यह विपरीत प्रभाव दुर्योधन के उत्तर से जाना—"हे केशव। मुझे दुर्योधन के जीते जो पाण्डवों को राज्य का उतना भाग भी

---

१. मृदु पूर्व शठोदर्कम्॥ (महा० उद्योग० ९१ प्र० १३) दुर्योधन की वाणी में प्रथम तो मृदुता थी परन्तु बाद में शठता प्रकट हो रही थी।

नहीं मिलेगा, जितना कि सुई की नोक से छिद' सकता है।" इस बात को सुनकर श्री कृष्ण ने भरी सभा में दुर्योधन को जो फटकार लगाई है, उसमें उनका स्वाभिमान व वीरता कूट कूट कर भरी हुई हुई है। श्रीकृष्ण ने कहा—"हे पापात्मन्' ! दुर्योधन ! तू पाण्डवों को जो उनका पैतृक भाग मांगने पर नहीं देना चाहता है, यह तेरा मिथ्याभिमान ही है। जब युद्धभूमि में धराशायी होने से तेरा यह मिथ्या अभिभान चूर चूर हो जायेगा, तब तुझे उनका भाग अवश्य ही देना पड़ेगा। एक राजा को इस प्रकार फटकार सुनाना बिना बल और बिना स्वाभिमान के कदापि सम्भव नहीं है।

और जब दुर्योधन ने दूत रूप में गये श्रीकृष्ण के कैद करने का षड्यन्त्र रचा, जिसका भंडाफोड़ वीर सात्यकि ने समय से पूर्व ही सभा में कर दिया, उस समय तो मानो श्रीकृष्ण का स्वाभिमान सर्वतो गामी प्रतीत हो रहा था। श्रीकृष्ण ने उसी समय धृतराष्ट्र की ओर देखकर जो सिंह गर्जना करते हुए कौरवों को चेलेंज दिया था, वह तो मानो अलौकिक ही था। श्रीकृष्ण बोले—"हे राजा धृतराष्ट्र' ! इन सबको तुरन्त आज्ञा दीजिये कि ये मुझे पकड़ पाते हैं या नहीं ? अथवा इन समस्त क्रोध से पूर्ण कौरवों को मैं कैद करने का सामर्थ्य रखता हूं।

---

(२) यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव ।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नं पाण्डवान् प्रति ।।
(महा॰ उद्योग १२७।२५)

(३) यच्चेभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यंशं न दित्ससि ।
तच्च पाप प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातित ।।
(महा॰ उद्योग १२८।१७)

(१) राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा ।
एते वा मामहं वैनान् अनुजानीहि पार्थिव ।।
एतान् हि सर्वान् संरब्धान् नियन्तुमहमुत्सहे ।।
(महा॰ उद्योग॰ १३०।२४-२५)